वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६० अंक ५ मई २०२२

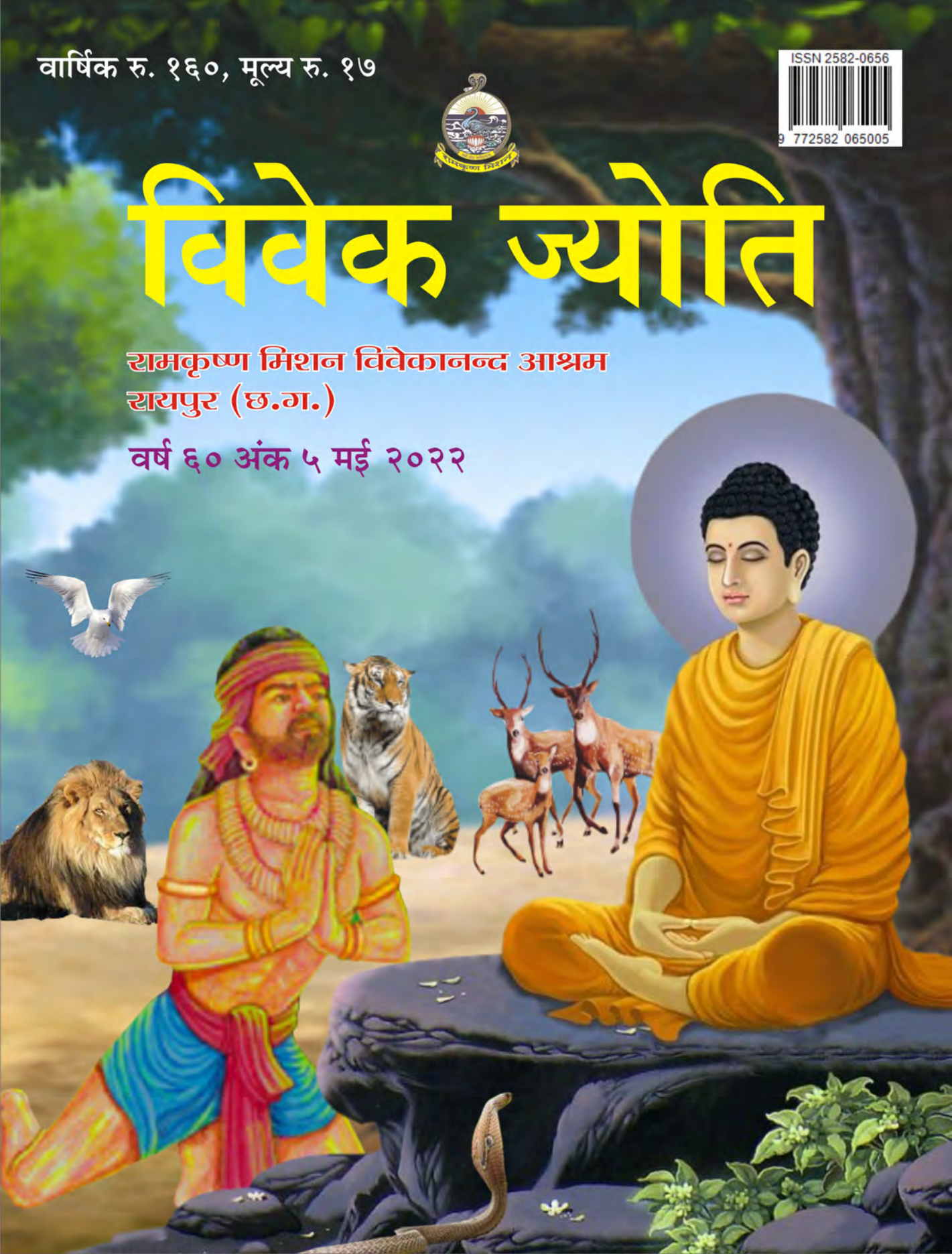

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६०

अंक ५

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक

स्वामी सत्यरूपानन्द

व्यवस्थापक

स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक

स्वामी पद्माक्षानन्द

वैशाख, सम्वत् २०७९

मई २०२२

अनुक्रमणिका

* मैं बुद्ध के समान नैतिक लोग देखना चाहता हूँ : विवेकानन्द १९८
* स्वामी विवेकानन्द के अनुज भूपेन्द्रनाथ दत्त : एक देशभक्त, विद्वान और क्रान्तिकारी (विनायक लोहानी) २०१
* संसार नहीं, स्वयं को बदलो (स्वामी सत्यरूपानन्द) २०७
* हम सबके बुद्ध (ज्योति सिंह) २०८
* (बच्चों का आंगन) मैं अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्रसेवा में समर्पित करूँगा (स्वामी गुणदानन्द) २११
* (युवा प्रांगण) अन्तर्मन की बात सुनें (सीताराम गुप्ता) २१६
* अहिंसा के चरणों में बन्दूक (अजय कुमार पाण्डेय) २२१
* श्रीहनुमन्निवेदनम् (डॉ. सत्येन्दु शर्मा) २०६
* (कविता) कृपालु हरि (सदाराम सिन्हा 'स्नेही') २०६
* (कविता) सृष्टि-दर्शन (आनन्द तिवारी पौराणिक) २०६

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) १९७
पुरखों की थाती १९७
सम्पादकीय १९९
रामराज्य का स्वरूप २१२
श्रीरामकृष्ण-गीता २१५
आध्यात्मिक जिज्ञासा २१९
सारगाछी की स्मृतियाँ २२६
प्रश्नोपनिषद् २२८
गीतातत्त्व-चिन्तन २३०
साधुओं के पावन प्रसंग २३४
समाचार और सूचनाएँ : रामकृष्ण मिशन की संचालन समिति की रिपोर्ट २३८

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : **०९८२७१ ९७५३५** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)

ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***

आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति १७/–	१६०/-	८००/-	१६००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	५० यू.एस. डॉलर	२५० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिये	२००/–	१०००/–	

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : रायपुर (छत्तीसगढ़)
अकाउण्ट नम्बर : 1 3 8 5 1 1 6 1 2 4
IFSC : CBIN0280804

* कृपया सदस्यता राशि जमा करने के बाद इसकी सूचना हमें तुरन्त **फोन, मोबाईल, एस.एम.एस., व्हाट्सएप, ई-मेल** अथवा **स्कैन द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड नं.** के साथ भेजें।
* विवेक-ज्योति पत्रिका के सदस्या किसी भी माह से बन सकते हैं।
* पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूर्ण होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।
* विवेक-ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमियता के कारण कई बार पत्रिका सदस्यों को नहीं मिलती है, अत: पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे कई सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है। पत्रिका न मिलने की शिकायत माह के अंत में ही करें। अंक उपलब्ध होने पर ही पुन: प्रेषित किया जायेगा।
* सदस्यता, एजेन्सी, विज्ञापन एवं अन्य विषयों की जानकारी के लिए 'व्यस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

मई माह के जयन्ती और त्यौहार

१	रामकृष्ण मिशन स्थापना दिवस
१६	बुद्ध पूर्णिमा
१२,२६	एकादशी

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन नि:शुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

भगवान बुद्ध के अहिंसात्मक वृत्ति के प्रभाव से सामान्य मनुष्य का तो कहना ही क्या, यहाँ तक की हिंसक प्राणी भी अपने स्वाभाविक हिंसक-वृत्ति को त्यागकर अहिंसात्मक वृत्ति से ओतप्रोत हो जाते हैं। इसी को आवरण पृष्ठ पर दर्शाया गया है।

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री नरेन्द्र एकनाथ चौधरी, बुलढाणा, (महा.)	२०००/-
सुश्री शोभा सिंह, सीतामढ़ी, राजपुर, बिहार	१५०१/-
श्री सीताराम साहू, छपोरा, रायपुर (छ.ग.)	१०००/-
श्री धर्मेन्द्र भवसार, अन्नपूर्णा रोड, इन्दौर	१०००/-

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६७९.	श्री काशीनाथ शास्त्री, हनुमान घाट, बनारस (उ.प्र.)	आदर्श शिक्षा मन्दिर, भदैनी, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)
६८०.	श्री आदित्य खंडेलवाल, बनारस (उ.प्र.)	लाईब्रेरी, मारवाड़ी सेवा संघ, संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी
६८१.	स्व. श्री भंवर लाल टुकालिया, सतना (म.प्र.)	केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान सारनाथ, वाराणसी

रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर, (छत्तीसगढ़)

A branch centre of Ramakrishna Mission, Belur Math, Howrah (W.B.)
Koni Road, P.O.Koni, Bilaspur (C.G.) - 495009
Ph.: +918240129728, Email : bilaspur@rkmm.org

प्रिय भक्तवृन्द एवं मित्रगण

रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर, छत्तीसगढ़ की स्थापना २२ फरवरी २०१९ को रामकृष्ण मिशन, बेलूड मठ, हावड़ा, की नई शाखा के रूप में हुई। पूर्व में यह श्रीरामकृष्ण सेवा समिति के नाम से संचालित था, जिसकी स्थापना स्वामी आत्मानन्दजी महाराज ने १९६७ में की थी। इस केन्द्र में निर्मित मंदिर की आधारशिला तत्कालीन श्रीरामकृष्ण संघ के उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज द्वारा वर्ष १९७७ में रखी गयी तथा मन्दिर का समर्पण तत्कालीन श्रीरामकृष्ण संघ के उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गहनानन्द जी महाराज द्वारा १९९५ में किया गया।

वर्तमान में यह आश्रम ७.९ एकड़ भूमि पर अवस्थित है। यहाँ कुछ पुराने निर्मित भवनों में साधुनिवास, अतिथिगृह एवं बच्चों के लिए नि:शुल्क छात्रावास चलाया जा रहा है। यहाँ निर्मित सभी भवन समय के साथ-साथ जीर्ण-शीर्ण हो गये हैं, जिनका तत्काल पुनर्निर्माण करना आवश्यक हो गया है।

इन परिस्थितियों में निर्णय लिया गया है कि मरम्मत का कार्य तत्काल प्रारम्भ किया जाए और तदुपरान्त अन्य नये निर्माण कार्यों को हाथ में लिया जाए। इस हेतु सुझाव, सहायता एवं धनसंग्रह के लिए भक्तों की एक समिति गठित की गई है । पहले चरण में छात्रावास भवन एवं अन्य गतिविधियाँ जैसे, कोचिंग सेन्टर, कम्प्यूटर क्लासरूम तथा मेडिकल सुविधाओं के लिये बाह्य-रोग विभाग (OPD), फिजियोथैरेपी तथा दंत-चिकित्सा -विभाग के संचालन के लिए भवन निर्माण किया जाना प्रस्तावित है । इन कार्यों को सम्पन्न करने के लिए अनुमानित लागत रु.१.७५ करोड़ है । यह कार्य आश्रम के वर्तमान अल्प आर्थिक स्रोतों से सम्भव नहीं है । अत: इन पुण्यकार्यों के लिए आप सबसे उदारतापूर्वक दान अपेक्षित है । आश्रम द्वारा क्षेत्र के भौतिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिये सभी मित्रों, भक्तों, ट्रस्ट, संस्था एवं कॉरपोरेट इकाइयों से अधिकाधिक सहयोग का विनम्र निवेदन है।

दान अथवा सहयोग राशि बैंक के **NEFT** या **RTGS** के माध्यम से नीचे दिए गए विवरण पर भेजी जा सकती है । सभी चेक, ड्राफ्ट अथवा मनी-ट्रांसफर, रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर के नाम से भेजें तथा इसकी सूचना अपने **PAN No.** एवं पूर्ण पते के साथ कार्यालय को प्रेषित करें। आश्रम को दिया गया दान आयकर अधिनियम की धारा **80G** के अन्तर्गत आयकर से मुक्त है। श्रीश्रीठाकुर, श्रीमाँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द जी आप सभी पर कृपा करें।

प्रस्तावित भवन

Bank Name : State Bank of India
S.B A/c No. : 3885115151369
Branch name : Lodhipara Koni
IFSC Code : SBIN0018879
and
A/c Name : Ramakrishna, Mission, Bilaspur
Bank Name : Bank of Baroda
S.B A/c No. : 06400100006990
Branch name : Bilaspur, Chhattisgarh
IFSCCode : BARBOBILASP (Fifth character is zero)

आपका
प्रभुपदाश्रित
(स्वामी सेवाव्रतानन्द)
सचिव
रामकृष्ण मिशन बिलासपुर

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर' !

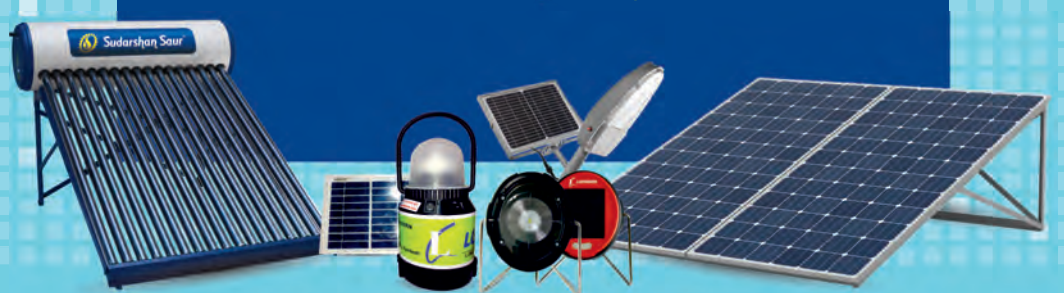

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखों संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com

Toll Free
1800 233 4545

E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६० **मई २०२२** **अंक ५**

श्रीबुद्धदेव-वन्दना

बद्ध्वा पद्मासने यो नयनयुगमिदं न्यस्य नासाग्रदेशे
धृत्वा मौनं च शान्तौ समरसमिलितौ चन्द्रसूर्याख्यवातौ।
पश्यन्नन्तर्विशुद्धं किमपि च परमं ज्योतिराकारहीनं
सौख्याम्भोधौ निमग्नः स दिशतु भवतां ज्ञानबोधं बुधोऽयम्।।

– जो पद्मासन लगाकर नयन-युगल की दृष्टि नासिका के अग्र भाग पर स्थिर किये हुए हैं, मौनधारण पूर्वक जिसने चन्द्ररूपी एवं सूर्यरूपी (अर्थात् इडा एवं पिंगला की) वायुद्वय को एकत्र समरस किया है, आकारहीन एवं विशुद्ध परम अन्तर्ज्योति को देखते हुए आनन्द सागर में निमग्न वह ज्ञानी (बुद्ध) आपको ज्ञान का उपदेश करे।

पुरखों की थाती

लोकद्वये नास्ति महानुभावो
अज्ञानतुल्यः पुरुषस्य शत्रुः।
अतो हि लोकद्वितयं सुखार्थी
ज्ञाने तु कुर्यात्पुरुषः प्रयत्नम्।।७५९।।

– हे महानुभाव, (इस लोक तथा परलोक) दोनों लोकों में अज्ञान जैसा मनुष्य का दूसरा कोई शत्रु नहीं है, अतः दोनों लोकों में सुख की इच्छा रखनेवाले व्यक्ति को ज्ञान-प्राप्ति के लिये प्रयास करते रहना चाहिये।

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्ते च साधुना।
आह्लादितं कुलं सर्वं यथा चन्द्रेण शर्वरी ।।७६०।।

– जैसे अकेला (पूर्णिमा का) चन्द्रमा ही रात को आलोकित कर देता है, वैसे ही एक ही विद्यावान तथा सज्जन सुपुत्र पूरे वंश को आह्लादित करने के लिये पर्याप्त है।

एकोदरसमुद्भूता एकनक्षत्रजातका।
न भवन्ति समा शीले यथा बदरिकण्टकाः।।७६१।।

– एक ही उदर से, एक ही नक्षत्र में जन्म लेने पर भी दो लोगों का स्वभाव एक समान नहीं होता। उदाहरण के लिए बेर और काँटों को देखा जा सकता है।

मैं बुद्ध के समान नैतिक लोग देखना चाहता हूँ : विवेकानन्द

* बुद्ध ध्वंस करने नहीं आये थे, वरन् वे हिन्दू धर्म की निष्पत्ति थे, उसकी तार्किक परिणति और उसके युक्तिसंगत विकास थे। (१/२३)

* मैं गौतम बुद्ध के समान नैतिक लोग देखना चाहता हूँ। वे सगुण ईश्वर अथवा आत्मा में विश्वास नहीं करते थे, उस विषय में कभी प्रश्न ही नहीं करते थे, उस विषय में पूर्ण अज्ञेयवादी थे, किन्तु जो सबके लिए अपने प्राण तक देने को प्रस्तुत थे, आजन्म दूसरों का उपकार करने में रत रहते तथा सदैव इसी चिन्ता में मग्न रहते थे कि दूसरों का उपकार किस प्रकार हो। उनके जीवन-चरित लिखनेवालों ने ठीक ही कहा है कि उन्होंने 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' जन्म ग्रहण किया था। वे अपनी निजी मुक्ति के लिए वन में तप करने नहीं गये। संसार जला जा रहा है और इसे बचाने का कोई उपाय मुझे खोज निकालना चाहिए। उनके समस्त जीवन में यही एक चिन्ता थी कि जगत् में इतना दुःख क्यों है? तुम लोग क्या यह समझते हो कि हम सब उनके समान नैतिकता परायण हैं? (८/५७/५८)

* बुद्ध एक महान वेदान्ती थे, (क्योंकि बौद्ध धर्म वास्तव में वेदान्त की शाखा मात्र है) और शंकराचार्य को भी कोई-कोई प्रच्छन्न बौद्ध कहते हैं। बुद्ध ने विश्लेषण किया था – शंकर ने उन सबका संश्लेषण किया है। बुद्ध ने कभी भी वेद या जाति-भेद अथवा पुरोहित या सामाजिक प्रथा किसी के सामने सिर नहीं झुकाया। जहाँ तक तर्क-विचार चल सकता है, वहाँ तक निर्भीकता के साथ उन्होंने तर्क-विचार किया है। इस प्रकार का निर्भीक सत्यानुसन्धान, प्राणिमात्र के प्रति इस प्रकार का प्रेम संसार में किसी ने कभी भी नहीं देखा। (७/७१)

* बुद्धदेव के जन्म के पूर्व इस देश में क्या था? तालपत्र की पोथियों में कुछ धर्म-तत्त्व था, सो भी बिरले ही मनुष्य उसको जानते थे। लोग इसको कैसे व्यावहारिक जीवन में चरितार्थ करें, यह बुद्धदेव ने ही सिखलाया। वे ही वास्तव में वेदान्त के स्फूर्ति देवता थे। (६/८२)

* भगवान बुद्ध ने धर्म के प्रायः सभी अन्याय पक्षों को कुछ समय के लिए दूर रखकर केवल दुःखों से पीड़ित संसार की सहायता करने के महान कार्य को प्रधानता दी थी। परन्तु फिर भी स्वार्थपूर्ण व्यक्ति-भाव से चिपके रहने के खोखलेपन के महान सत्य का अनुभव करने के निमित्त आत्मानुसन्धान में उन्हें भी अनेक वर्ष बिताने पड़े थे। बुद्ध से अधिक निःस्वार्थ तथा अथक कर्मी हमारी उच्च से उच्च कल्पना के भी परे है। परन्तु फिर भी उनकी अपेक्षा और किसे समस्त विषयों का रहस्य जानने के लिए इतने विकट संघर्ष करने पड़े? (९/२५८)

* बुद्ध एक वेदान्तवादी संन्यासी थे। उन्होंने एक नये सम्प्रदाय की स्थापना की थी, जैसे कि आजकल नये-नये सम्प्रदाय स्थापित होते हैं। जो सब भाव आजकल बौद्ध धर्म के नाम से प्रचलित हैं, वे वास्तव में बुद्ध के अपने नहीं थे। वे तो उनसे भी बहुत प्राचीन थे। बुद्ध एक महापुरुष थे, उन्होंने इन भावों में शक्ति का संचार कर दिया था। बौद्ध धर्म का सामाजिक भाव ही उसकी नवीनता है। (विवेकानन्द साहित्य १०/३९५)

सम्पादकीय

भगवान बुद्ध की अहिंसा और उसकी व्यावहारिक उपयोगिता

भगवान बुद्ध वह महान अवतार हैं, जिन्होंने मानव के दुखों से दुखित होकर उस दुख से मुक्ति हेतु मार्ग का अनुसन्धान किया। उन्होंने वह मार्गान्वेषण चमत्कारी अलौकिक अवतारी लीला से नहीं, अपितु प्रत्यक्ष रूप से अपने राजसी सुख-वैभव छोड़कर अरण्य में जाकर कठोर तप करके किया। उस कठोर तप के बाद उन्होंने मध्यम मार्ग अपनाया और एक दिन उन्हें उनके प्रश्न का उत्तर मिल गया, उनके चित्त में वह तत्त्व प्रकाशित हो गया – दुख है, तो उससे मुक्ति का उपाय भी है। वह उपाय है निर्वाणोपलब्धि।

भगवान बुद्ध का जीवन मानव को वैज्ञानिक दृष्टिकोणपरक स्वयं साधना कर मानवीय धरातल से ऊँचे उठकर निर्वाण की, परम तत्त्व की प्रत्यक्ष अनुभूति करने की प्रेरणा प्रदान करता है। उनके द्वारा प्रवर्तित साधना मनुष्य के अन्त:करण से दुख-क्लेशादि का नाशकर उसे निर्वाण-प्राप्ति कराकर असीम आनन्द में प्रतिष्ठित करती है। उनकी साधना-प्रणाली– आर्य अष्टांग मार्ग, आर्यसत्य आदि की चर्चा बौद्ध-दर्शन में विस्तृत रूप से उपलब्ध है।

महात्मा बुद्ध का लौकिक और पारमार्थिक दृष्टि से श्रेष्ठ सबसे व्यावहारिक सिद्धान्त है पंचशील। भारत के प्रधानमन्त्री पंडित श्री जवाहरलाल नेहरू ने संयुक्त राष्ट्रसंघ में जिस अभिनव 'पंचशील' के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया, जिसके कई देश सदस्य हैं, उसकी प्रेरणा उन्हें सम्भवत: यहीं से मिली थी। बुद्ध का पंचशील सिद्धान्त है – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और आर्जव। इसमें प्रथम अहिंसा है, जिसका हम यहाँ संक्षिप्त विवेचन करेंगे।

अहिंसा का शाब्दिक अर्थ है, किसी की हिंसा नहीं करना। इस अहिंसा शब्द का प्रयोग विभिन्न स्तरों पर कई लोगों के द्वारा भिन्न-भिन्न उद्देश्य से किया गया। आत्मरक्षा हेतु देश-काल-परिस्थिति के अनुसार अहिंसा की स्वीकृति-अस्वीकृति भी हुई। मनुस्मृति में कहा गया – **नाततायी वधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन** (८.३५१) – अर्थात् आततायी के वध में हन्ता का कोई दोष नहीं। उसी शास्त्र में यह भी कहा गया – **अहिंसैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।** (मनु. २/१५९) अर्थात् अहिंसा प्राणियों का सर्वश्रेष्ठ अनुशासन है। महाभारत में कहा गया –

अहिंसा परमो धर्म: तथाऽहिंसा परमो दम:।
अहिंसा परमं दानं अहिंसा परमं तप:।।
(११६/२० महासभा अनु.पर्व)

– अहिंसा ही परम धर्म है, अहिंसा ही परम संयम है, अहिंसा ही परम दान है, अहिंसा ही परम तप है। महाभारत शान्तिपर्व में कहा गया कि **अहिंसा सकलो धर्म: हिंसा-अधर्म: तथाहित:।** अर्थात् अहिंसा सम्यक् पूर्ण धर्म है और हिंसा अधर्म तथा अहितकर है। इस प्रकार अहिंसा परम धर्म के रूप में यहाँ प्रतिपादित की गयी।

अहिंसा का स्तर

अहिंसा का पालन किस-किस स्तर पर कब करना चाहिए, इसका निर्णय भी विभिन्न स्तरों पर देश-काल-परिस्थिति और पात्रानुसार होता है। विभिन्न दार्शनिक शब्दों के शब्द-जाल में न पड़कर अहिंसा-पालन शारीरिक, वाचिक और मानसिक स्तर पर होना चाहिये।

शारीरिक स्तर पर अहिंसा-पालन

श्रीमदभगवद्-गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा – **ब्रह्मचर्यम् अहिंसा च शारीरं तप उच्चते।। (१७/१४)** ब्रह्मचर्य और अहिंसा शारीरिक तप कहा जाता है। तन से किसी पर अस्त्र-शस्त्र से प्रहार नहीं करना। किसी को नहीं मारना-पीटना, चोट पहुँचाना, शारीरिक अहिंसा-पालन के अन्तर्गत आता है। किन्तु आततताइयों, आतंकियों और हत्यारों से आत्मरक्षा में हिंसा युक्तिसंगत प्रतीत होती है।

वाचिक स्तर पर अहिंसा-पालन

किसी को कठोर वचन बोलने से परस्पर विवाद हो जाता है, लोग कठोर व्यंग्य एवं अपशब्द सुनकर आत्महत्या तक कर लेते हैं, अत: किसी को वाणी से अपशब्द बोलकर

कष्ट नहीं देना, किसी से विवाद नहीं करना, यह वाचिक अहिंसा है।

मानसिक स्तर पर अहिंसा-पालन

मन से किसी का बुरा नहीं सोचना, किसी के प्रति द्वेष-द्रोह आदि नहीं करना मानसिक अहिंसा है।

भगवान जैन और भगवान बुद्ध ने आन्तरिक साधना के स्तर पर इसे बहुत महत्त्व दिया। केवल मनुष्य हीं नहीं; किसी भी प्राणी, जीव-जन्तु की भी हिंसा नहीं करनी चाहिए। इसलिए जैन सम्प्रदाय में रात में लोग पानी नहीं पीते, खाना नहीं खाते कि कहीं छोटे जीव अनजाने में न मर जायँ। भगवान बुद्ध किसी जन्म में एक मेमने के लिए अपने जीवन की बलि देने को प्रस्तुत थे। प्राणियों के प्रति उनकी ऐसी संवेदना थी। ऐसे महापुरुष साधना के उच्च शिखर पर पहुँचकर विराट विश्व के साथ एकात्म होकर सम्पूर्ण चराचर के साथ एकत्व की अनुभूति कर लेते हैं, तब कौन किसके साथ हिंसा करेगा। वह अहिंसा की साधना फिर साध्य के रूप में दृष्टिगोचर होती है। ऐसे अहिंसक महापुरुषों के सान्निध्य में हिंसक पशु तक अपनी हिंसा छोड़ देते हैं। महर्षि पतंजलि ने कहा था – **अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः** – अर्थात् अहिंसा में पूर्ण प्रतिष्ठित व्यक्ति के पास हिंसक प्राणी भी अपना बैर त्याग देते हैं।

अधिकांश लोग मानवों के प्रति शारीरिक हिंसा छोड़ देते हैं, लेकिन वाचिक और मानसिक हिंसा से विरत नहीं होते, इसलिए उन्हें मानव नहीं, किन्तु मच्छर, कुत्ते, साँप काटने दौड़ते हैं, शेर-भालू मिलने पर तो कोई बात ही नहीं है। लेकिन तन-मन-वचन सब प्रकार से अहिंसा में प्रतिष्ठित व्यक्ति के समक्ष अन्य सभी प्राणी अपना बैर-भाव भूल जाते हैं। प्राचीन ऋषि-मुनियों को हिंसक जीवों से कोई भय नहीं था। भगवान बुद्ध इसके साक्षात् प्रमाण हैं।

अहिंसा का प्रभाव : भगवान बुद्ध और अंगुलिमाल

अंगुलिमाल से पूरी प्रजा त्रस्त थी। राजा के सभी सैन्यबल उसके समक्ष पराजित थे। प्रजा अंगुलिमाल से त्राहि-त्राहि कर रही थी। जब राज्य, शासन, मंत्री, सैन्य-बल सब अपने-अपने बुद्धि, बल का प्रयोग कर हार गये, तब प्रजा को उस अंगुलिमाल से मुक्ति दिलाने हेतु एक अकिंचन निरस्त्र, भिक्षु का पर्दापण उस अरण्य में होता है। प्रजा ने इस संन्यासी, भिक्षु को मना किया, किन्तु वे क्यों माने? वे क्यों डरे? उनके कदम उस वन की ओर बढ़ते गये। कुछ देर चलने के बाद एक कर्कश ध्वनि कर्ण-कुहरों में सुनाई पड़ी – रुक जाओ ! भिक्षु अविलम्ब रुक गये। उस डकैत के आने पर बड़े शान्त शब्दों में भिक्षु ने कहा – मैं तो रुक गया, लेकिन तुम कब रुकोगे। इस शान्त प्रेममय मधुर ध्वनि ने अंगुलिमाल के हृदय को झकझोर दिया। वह संन्यासी की निडर वाणी को सुनकर विस्मित हो गया और वह बुद्ध के चरणों में समर्पित हो गया। यह प्रभाव है अहिंसा में पूर्ण प्रतिष्ठित होने का।

अहिंसावादी के चरणों में चम्बल-डकैतों का समर्पण

भगवान बुद्ध ने स्वयं कहा था – जो कोई भी साधना करेगा, इस अष्टांगिक मार्ग को अपनाएगा, वह भी बुद्ध हो जाएगा। अंगुलिमाल के समर्पण ने भविष्य के शासकों और समाज-सुधारकों को एक आशा और विश्वास दिलाया कि हमेशा सैन्य से नहीं; प्रेम, सद्भाव से दस्यु-हृदय को भी परिवर्तित कर उसे सन्मार्ग पर लाया जा सकता है और समाज से हिंसा को रोका जा सकता है। जब चम्बल के खूँखार डकैतों से चम्बल की घाटी दहल उठी, जब हिंसा-प्रतिहिंसा में सैकड़ों हत्यायें होने लगीं, पुलिस, प्रशासन, शासन-तन्त्र अपनी निरीह जनता की हत्या से दुखित और उसे रोकने में विवश हो गया, जब अस्त्र-शस्त्र काम नहीं आया, तब एक निहत्थे अहिंसावादी युवाओं के प्रेरणा-स्रोत सम्माननीय एस. एन. सुब्बा राव 'भाईजी' ने चम्बल के ५२१ और उत्तर प्रदेश के १२३ कुल ६५४ डकैतों का समर्पण कराकर उस क्षेत्र में शान्ति स्थापित की थी। इस प्रकार हम अहिंसा के प्रभाव को देख सकते हैं। अतः अहिंसा का देश-काल-पात्रानुसार अपने जीवन में उपयोग कर परिवार, देश और विश्व में शान्ति स्थापित करने का प्रयास किया जा सकता है।

अहिंसा अन्य परिप्रेक्ष्य में

अंग्रेजी सरकार के द्वारा भारतवासियों पर अत्याचार करने के विरुद्ध अँग्रेजी-तन्त्र तक अपनी बात पहुँचाने के लिए महात्मा गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन चलाया। उनका आन्दोलन पूर्णतः अहिंसात्मक था। उनके द्वारा अहिंसा आन्दोलन का अर्थ था कि हम सरकारी तन्त्र पर किसी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र से प्रहार नहीं करेंगे। बिना किसी को चोट पहुँचाए हम अपनी बात सरकार के समक्ष रखेंगे।

शेष भाग पृष्ठ २३३ पर

स्वामी विवेकानन्द के अनुज भूपेन्द्रनाथ दत्त : एक देशभक्त, विद्वान और क्रान्तिकारी

विनायक लोहानी

संस्थापक, परिवार संस्था, पश्चिम बंगाल

अनुवाद : स्वामी उरुक्रमानन्द

(गतांक से आगे)

अमेरिका में भूपेन्द्रनाथ

१९०८ ई. में कारावास से उनकी मुक्ति के बाद भगिनी निवेदिता जो उस समय पश्चिम में थीं एवं भगिनी क्रिस्टीन (स्वामी विवेकानन्द की एक जर्मन-अमेरिकी शिष्या जो निवेदिता के साथ कोलकाता में १९०३ से कार्य कर रही थीं) की चेष्टाओं से भूपेन्द्र को अमेरिका भेज दिया गया। उनको चिन्ता थी कि अलीपुर बम-षड्यन्त्र के फलस्वरूप उस समय क्रान्तिकारियों पर चल रहे दमन के कारण भूपेन्द्र को किसी भी कारण से किसी भी समय पुन: गिरफ्तार कर लिया जाएगा और सम्भवत: उन्हें और भी कठोर सजा जैसे – अन्दमान के सेल्यूलर जेल में आजीवन कारावास की सजा दी जा सकती थी। अत: उन्होंने निर्णय लिया कि भूपेन्द्र पश्चिम में जाकर अपनी उच्च शिक्षा पूरी करें, जो क्रान्तिकारी आन्दोलन के कारण अपूर्ण रह गयी थी। भूपेन्द्र छद्मवेश में जहाज पकड़कर एक माह के बाद अमेरिका पहुँचे। उनके निवास की व्यवस्था भगिनी निवेदिता एवं स्वामी विवेकानन्द के अन्यान्य अनुरागी जैसे श्रीमती बुल एवं कुमारी जोसेफाइन मैक्लाउड द्वारा पहले ही कर दी गयी थी।

भगिनी निवेदिता १९०९ के प्रारम्भ में न्यूयॉर्क शहर में थीं। उस समय निवेदिता के घनिष्ठ बन्धु वैज्ञानिक श्री जगदीशचन्द्र बसु भी वहीं पर थे। दोनों ने मिलकर न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय में भूपेन्द्र के लिए उपयुक्त विषय में पाठ्य-विषय चुने। दो वर्षों बाद निवेदिता जो पुन: अमेरिका में श्रीमती बुल के अन्तिम दिनों में उनकी शुश्रूषा करने आई थीं, वे भूपेन्द्र से मिलीं और बोलीं, 'भूपेन्द्र, मैं तुम्हें देश के प्रति निवेदित समझती हूँ। इसीलिए तुम विवाह मत करना।'' जो लोग क्रान्तिकारी आन्दोलन से जुड़े रहते थे और समझते थे कि उन पर फाँसी का फन्दा सदा झूलते ही रहता है, उनके

लिए ऐसी प्रतिज्ञा कोई असामान्य बात न थी।

न्यूयॉर्क शहर में भूपेन्द्र के रहने की व्यवस्था 'इंडिया हाऊस' में की गयी। Myon H. Phelps नामक एक अमेरिकी वकील थे, जो भारतीय स्वतन्त्रता के एक बड़े समर्थक थे। भूपेन्द्र ने अपने अमेरिका प्रवास को अपनी बांग्ला पुस्तक 'आमार अमरिका अभिज्ञता' में वर्णन किया। Myon H. Phelps के अलावा Rev. Jevez Thomas Sunderland के भी संस्पर्श में आए। ये सज्जन अमेरिका में भारतीय स्वतन्त्रता के सबसे पहले समर्थकों में थे। उनकी पुस्तक 'India in bondage' ने ब्रिटिश साम्राज्य के उचित तथ्य एवं परिसंख्या का हवाला देकर एवं तीव्र भर्त्सना करके हलचल मचा दी। भूपेन्द्र का George Freeman से भी परिचय हुआ जो, अमेरिका में छपनेवाली एक आयरिश पत्रिका 'Gaelic-American' के एक सह-सम्पादक थे और भारत में ब्रिटिश शोषण पर लेख छापते थे। भूपेन्द्र उनसे कई बार मिले एवं पत्राचार भी किया। George Freeman यहूदी विरोधी और ब्रिटिश विरोधी थे एवं उनका मानना था कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव में यहूदी पूँजी ही है।

भूपेन्द्र अमेरिकी बौद्धिक जीवन की प्रगतिशील विचारधारा के भी संस्पर्श में आए। अपनी स्नातकोत्तर शिक्षा के लिए उन्होंने ब्राउन विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। वे Professor Lester F. Ward के समाजशास्त्र से अत्यन्त प्रभावित एवं वे उन्हें अपना बौद्धिक मार्गदर्शक मानते थे। भूपेन्द्र Bronx Part Socialist Club के सदस्य भी बने एवं न्यूयॉर्क में स्थित Rand School of Social Sciences में अमेरिकी समाजवादी नेताओं के भाषण भी सुनते थे। वे अपने बौद्धिक क्षितिज के विस्तृत करनेवाले इन बुद्धिजीवियों के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ रहे।

वर्ष १९११ ई. भूपेन्द्र को कई व्यक्तिगत धक्के दे गया। उनकी माता का कोलकाता में देहान्त हो गया और उसी साल उनकी बड़ी शुभाकांक्षी श्रीमती बुल का भी निधन हुआ। एक अत्यधिक एवं अप्रत्याशित धक्का तब लगा, जब अक्तूबर, १९११ में निवेदिता का मात्र ४३ वर्ष की आयु में देहान्त हो गया। निवेदिता दीर्घ काल तक उनकी मार्गदर्शिका रहीं एवं वे भी उनका बड़ा सम्मान करते थे। उसके पश्चात् स्वामी विवेकानन्द की मित्र एवं अनुरागिणी कुमारी मैक्लाउड ही भूपेन्द्र की एकमात्र मार्गदर्शिका एवं शुभाकांक्षी रह गयीं।

कुमारी जोसेफिन मैक्लाउड

कुमारी मैक्लाउड ने भारत में शिक्षण-क्षेत्र में भूपेन्द्र के लिए एक उपयुक्त नौकरी खोजने की चेष्टा की। उनका रवीन्द्र नाथ ठाकुर से परिचय था और इसलिए उन्होंने उनको पत्र लिखकर निवेदन किया कि वे भूपेन्द्र को शान्ति-निकेतन में नियुक्त कर लें। रवीन्द्रनाथ उस समय अमेरिका में ही इलिनॉय प्रान्त में प्रवास में थे, जहाँ उनके पुत्र रथीन्द्रनाथ कृषि विज्ञान की शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। रवीन्द्रनाथ ने उन्हें उत्तर में पत्र भेजकर खेदपूर्वक भूपेन्द्र को नौकरी न दिलाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की, क्योंकि भूपेन्द्र पहले क्रान्तिकारी आंदोलन से जुड़े थे, इसलिये उनके संस्थान को कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता था। उन्होंने यह बताया कि इसके कारण उनके संस्थान को ब्रिटिश शासन के क्रोध का भाजन बनना पड़ेगा।

बर्लिन में भूपेन्द्रनाथ

नई शताब्दी के पहले दशक के अन्त में यूरोप भारतीय क्रान्तिकारी के एक केन्द्र के रूप में हो गया। मैडम कामा और बाद में श्यामजी कृष्णवर्मा यूरोप से ही कार्य कर रहे थे। उनकी उपस्थिति कई तरुण क्रान्तिकारियों को खींच लाई। एक बड़े युद्ध की सम्भावना देखते हुए इन भारतीयों ने ऐसी परिस्थिति को भारतीय स्वतन्त्रता के लिए उपयोग में लाने की सोची। जर्मनी इसका नाभिकेन्द्र बन रहा था। जर्मन तन्त्र भी भारतीय क्रान्तिकारियों से सम्बन्ध स्थापित करना चाह रहा था, जिससे वह ब्रिटेन के संसाधन एवं सैन्य-सामर्थ्य को धक्का पहुँचा सके। कैसर ने स्वयं इसकी अनुमति प्रदान की थी। German Office ने वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, अविनाशचन्द्र भट्टाचार्य एवं चम्पक रमन पिल्लै जैसे यूरोप में रह रहे भारतीय क्रान्तिकारी के साथ सम्पर्क स्थापित किया। जर्मन पक्ष से प्राथमिक रूप से बातचीत Max von Oppenheim ने की।

बर्लिन में चल रहे इस घटनाक्रम में महत्त्वपूर्ण भूमिका वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय (जो केवल चट्टो नाम से जाने जाते थे) ने ली। चट्टो के पिताजी अघोरनाथ चट्टोपाध्याय एक गणितज्ञ थे एवं भारत के प्रथम D.Sc. (Doctor of Science) एवं हैदराबाद निजाम महाविद्यालय के प्रथम प्राचार्य थे। चट्टो के कुछ और सहोदर बाद में विख्यात हुए, जिनमें अंग्रेजी की कुशल कवयित्री सरोजिनी नायडू थीं, वे पहली भारतीय महिला थीं, जो कांग्रेस की अध्यक्षा बनीं। उनके छोटे भाई हरीन्द्रनाथ कवि, नाट्यकार, गायक, गीतकार, संगीतकार और स्वतन्त्र भारत के लोकसभा सदस्य भी थे। चट्टो लन्दन में १९०२ ई. में आए थे और ICS परीक्षा की तैयारी में कुछ सयय बिताने के बाद कानून पढ़ने लगे। वे श्यामजी कृष्णवर्मा द्वारा स्थापित लन्दन के इण्डिया हाऊस में रहते थे। इण्डिया हाऊस देखने में बाहर से तो एक छात्रावास

सरोजिनी नायडू

की तरह प्रतीत होता था, किन्तु वास्तव में क्रान्तिकरियों के शिक्षण-प्रशिक्षण का एक नाभि केन्द्र ही था। यहाँ पर रहते थे – विनायक दामोदर सावरकर, वी.वी.एस. अय्यर, एम. पी.टी. आचार्य एवं मदनलाल ढींगरा। मदनलाल ने सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के ए.डी.सी. कर्जन वायली की हत्या कर दी थी, जिसके कारण उन्हें फाँसी की सजा मिली एवं इंडिया हाऊस बन्द हो गया। चट्टो लन्दन से पेरिस आ गये और उधर मैडम कामा के सहयोगी हो गये। वे 'वन्दे मातरम' पत्रिका (जिसका नाम पाल-अरविन्द की बांगला पत्रिका के नाम पर ही रखा गया था) एवं तलवार (जिसे पहले Madan's Talwar कहा जाता था और जिसका नाम ढींगरा के नाम पर रखा गया था), इन पत्रिकाओं में लेख लिखा करते थे। प्रथम विश्वमहायुद्ध के आरम्भ में चट्टो पेरिस से जर्मनी चले गये, जिसका दिखाने का उद्देश्य था पीएचडी में पंजीकृत कराना, किन्तु असल में वे क्रान्तिकारी क्रिया-कलापों की एक नई दिशा लेना चाहते थे। वे अविनाशचन्द्र भट्टाचार्य नाम के रसायनशास्त्र के शोधकर्ता के साथ जर्मन विदेश कार्यालय के अधिकारियों से मिले, जिसके कारण एक नया संगठन तैयार हुआ – Deutscher Verein Der Freunde Indien (The society of Friends of India)– बाद में जर्मन-सदस्यों को इस संगठन से हटा दिया गया था और यह पूर्णत: एक भारतीय संगठन बन गया, जिसका नया नाम रखा गया – Indian Independence League जिसे साधारण भाषा में बर्लिन कमिटी के नाम से जाना जाने लगा।

विनायक दामोदर सावरकर

भूपेन्द्र उस समय अमेरिका में थे और मिन्नेसोटा विश्वविद्यालय में पीएचडी के लिए नाम लिखवाए थे। किन्तु बदलते परिवेश में वे न्यूयॉर्क के जर्मन कॉन्स्यूल से मिले और उन्हें प्रवासी भारतीयों का एक दस्ता बनाने का प्रस्ताव दिया। उन्होंने अमेरिका में गदर पार्टी से सम्पर्क साधा। गदर पार्टी अधिकांशत: अमेरिका और कनाडा में निवास कर रहे पंजाबियों का संगठन था, जो उनकी स्थानीय समस्याओं के निराकरण एवं भारतीय स्वतन्त्रता के बृहत्तर उद्देश्य के लिए काम करती थी। इस संगठन को लाला हरदयाल के नेतृत्व में तेज गति मिली। ये कई भाषाओं में जैसे – उर्दू, गुरुमुखी, मराठी, गुजराती, हिन्दी एवं कभी-कभी अंग्रेजी और गोरखाली में गदर (जिसका अर्थ था – विद्रोह) नाम से पत्रिकाएँ छापने लगी। भूपेन्द्र ने गदर संगठन से जर्मन सेना के पक्ष में रहकर अंग्रेजी सेना से लड़ने की सम्भावनाओं की चर्चा की। किन्तु भूपेन्द्र के इस प्रस्ताव को गदर संगठन से कोई ठोस सकारात्मक उत्तर नहीं मिला।

बर्लिन कमिटी के द्वारा परिकल्पित प्रमुख कार्य थे जर्मनी में भारतीय युद्ध-कैदियों के बीच अपने पक्ष का प्रचार, मिस्र और अरब क्षेत्र में भारतीय सैन्य बलों में विद्रोह फैलाना एवं भारत में क्रान्ति के लिए अस्त्र-शस्त्र पहुँचाना एवं आर्थिक रूप से सहायता करना। कमिटी ने धीरेन्द्र कुमार सरकार और नारायण मराठे को गदर-संगठन से सम्पर्क करने के लिए अमेरिका भेजा। इसके बाद लाला हरदयाल, तारकनाथ दास, वीरेन्द्रनाथ दासगुप्त, जीतेन्द्रनाथ लाहिड़ी इत्यादी बर्लिन आये। ये सब होने के साथ-साथ भूपेन्द्र भी बर्लिन आ गये एवं बर्लिन कमिटी में पूर्णकालिक कार्यकर्ता बन गये। कालान्तर में उन्होंने कमिटी के सचिव के रूप में कार्यभार सम्भाला।

इस दौरान, भारत में क्रान्तिकारियों पर तीव्र प्रतिघात किया गया, जिसके फलस्वरूप बहुत सारे क्रान्तिकारियों जैसे बारीन्द्र घोष, हेमचन्द्र कानूनगो, उल्लासकर दत्त इत्यादि को कालापानी की सजा सुनाई गयी। श्री अरविन्द भी क्रान्तिकारी गतिविधियों से निवृत्त होकर पाण्डिचेरी चले गये। इससे क्रान्तिकारी आन्दोलन में बाधा आ गयी।

इस बाधा को जतीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के गतिशील नेतृत्व ने पूर्ण किया, (ये बाघा जतीन के नाम से परिचित थे, जो नाम उन्हें १९०६ में अपने हाथों से एक बाघ को मार गिराने के पश्चात् मिला था)। बर्लिन कमिटी ने भारत के क्रान्तिकारियों से सम्पर्क करने के लिए सन्देशवाहक के रूप में सत्येन सेन, विष्णु गणेश पिंगले और कर्तारसिंह को भेजा। पिंगले अमेरिका से इंजीनियरिंग स्नातक थे, उन्होंने वाराणसी संगठन से सम्पर्क स्थापित किया एवं वे रासबिहारी बसु एवं सचीन्द्रनाथ सान्याल से मिले। योजना थी भारत के ऊपर पश्चिम से तुर्की, ईरान और अफगानिस्तान से और पूर्व में बर्मा की सीमा से आक्रमण करना और इस तरह से तन्त्र को अपने हाथ में ले लेना।

बर्लिन कमिटी की प्रचेष्टा के कारण एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के फलस्वरूप भारत में बिखरे हुए क्रान्तिकारी संगठनों में अधिक समन्वय होने लगा। बंगाल में बाघा जतीन और उत्तर भारत में सचिन्द्रनाथ सान्याल और रासबिहारी बसु क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रधान नेता के रूप में उभर कर आये। उत्तर अमेरिका से हजारों गदर संगठन के सदस्य एक बड़े अभियान की अपेक्षा में भारत लौटे।

फरवरी १९१५ में भारत की विभिन्न सैन्य छावनियों में सिंगापुर जैसे दूसरे स्थानों में एक बड़े विद्रोह की परिकल्पना थी। हालाँकि, यह अभियान भेदियों द्वारा खबर देने के कारण विफल हो गया। सिंगापुर में एक मात्र विद्रोह हुआ और कई भारतीय सैनिक शहीद हुए। बाघा जतीन को बालेश्वर के निकट बूढ़ाबालंगा नदी के तट पर गोली मारी गयी, जहाँ वे और उनके साथी अस्त्र-शस्त्र की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनका कुछ दिनों बाद चिकित्सालय में निधन हो गया। अपने असाधारण शौर्य के कारण सारे देश में और विशेषकर बंगाल के जन-मानस में उनकी स्मृति चिरकाल के लिए अंकित हो गयी। हिन्दू-जर्मन षड्यन्त्र के नाम से विख्यात इस कालखण्ड में देश के विभिन्न प्रान्तों से क्रान्तिकारी पकड़े गये और शहीद हुए। इसमें शामिल थे २७ वर्षीय पिंगले और मात्र १९ वर्ष के कर्तारसिंह।

बर्लिन कमिटी ने Suez Canal क्षेत्र बगदाद, Persia और अफगानिस्तान में दूत भेजे थे। वीरेन्द्रनाथ, भूपेन्द्र और वीरेन्द्र दासगुप्त इस्तान्बुल गये, जहाँ वे सैन्य छावनियों में बन्दी भारतीय सिपाहियों एवं अधिकारियों से मिले। उन्होंने एक राष्ट्रीय मुक्ति सेना स्थापित करने की योजना बनाई थी, किन्तु यह प्रयास सफल नहीं हुआ। काबुल में १ दिसम्बर, १९१५ को Indian Provisional Government in Exile की स्थापना की। इसका नेतृत्व राजा महेन्द्र प्रताप सिंह और मौलाना बरकतुल्लाह ने किया। उन्होंने भी जर्मनों एवं अफगानियों के सैन्य सहयोग से विद्रोह की परिकल्पना की थी, पर ये योजना भी सफल नहीं हो सकी। इन दोनों व्यक्तियों के जीवन-चरित्र बड़े रोचक थे। महेन्द्र प्रताप को नेहरू ने अपनी आत्मकथा में बीसवीं शताब्दी में विपथगामी हुए Don Quixote बताया था। ये महेन्द्रनाथ प्रताप बहुत वर्षों पश्चात् भारत में १९५७ मथुरा से लोकसभा का चुनाव जीते थे, जहाँ उन्होंने युवा अटलबिहारी वाजपेयी को पराजित किया। बरकतुल्लाह एक अन्तर्राष्ट्रीय परिव्राजक की तरह रहे, उनका जन्म भोपाल में हुआ, टोक्यो में प्रोफेसर रहे, यूरोप में कई वर्ष बिताए और सेन फ्रांसिस्को में मृत्यु हुई।

बर्लिन कमिटी प्रकाशन कार्य में भी अग्रसर हुई। यूरोप एवं अन्य स्थानों में ब्रिटिश शासन के बारे में बौद्धिक मत को और उद्‌बुद्ध करने के लिए कई ग्रन्थ एवं पुस्तिकाएँ प्रकाशित कीं। भूपेन्द्र और चट्टो की इन ग्रन्थों के लेखन में प्रबल भूमिका रही। कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ थे : 'Is India loyal', 'British Rule in Indian Condemned by British themselves'. 'True Verdict of India', 'A history of Ten Years Fight for Freedom', 'How England acquired India', 'India's demand for Freedom', and the 'Socialist Conference on British Rule in India.' बर्लिन कमिटी का एक सर्वसम्मत उद्देश्य था भारत को ब्रिटिश शासन से मुक्त कराने के बाद एक समाजवादी गणतन्त्र की तरह स्थापित करना। १९१७ के बीच में भूपेन्द्र और चट्टो स्टॉकहोम चले गये, क्योंकि वह एक निरपेक्ष क्षेत्र था। उन्होंने रशियन बोल्शिविकों के साथ सम्पर्क स्थापित किया। महायुद्ध में जर्मनी की पराजय के साथ बर्लिन कमिटी को औपचारिक रूप से भंग कर दिया गया। इसके साथ ही जर्मनी में कैसर का शासन हुआ और जर्मनी उथल-पुथल के समय से गुजरा, जिसमें कई कम्युनिस्ट नेता जैसे Rosa Luxemburg और Karl Liebknecht की हत्या हुई। नया शासन भारतीय स्वतन्त्रता के विषय में कोई रुचि नहीं रखता था। भूपेन्द्र जर्मनी में ही रहने लगे और वे हैम्बर्ग विश्वविद्यालय में मानव-विज्ञान (Anthropology) में पीएचडी करने लगे। वे बर्लिन एंथोंपोलोजिकल सोसायटी के सदस्य भी बने। इसी समय अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में घट रही रोचक गतिविधियों के संस्पर्श में भूपेन्द्र आ गये, जिसमें इस आन्दोलन को भीतर से देखने का अवसर मिला।

अन्तर्राष्ट्रीय कम्यूनिस्ट आन्दोलन में

सारे विश्व में असंख्य लोगों की तरह १९१७ की अक्तूबर क्रान्ति और सोवियत संघ का गठन हुआ, इससे भूपेन्द्र के मन में भी नई आशा का संचार हुआ। उन्हें लगा कि तत्कालीन परिस्थिति में मात्र समाजवादी एवं कम्यूनिस्ट ही भारत की स्वतन्त्रता के लिए समर्थन दे सकते हैं। स्टाकहोम में भूपेन्द्र और चट्टो ने एक सम्मेलन में भाग लिया, जिसमें और भी कई प्रवासी क्रान्तिकारी शामिल हुए थे। इसमें यह निश्चय हुआ कि जो क्रान्तिकारी राष्ट्रवादी थे, वे अपना संगठन बनाकर देश की स्वतन्त्रता के लिए काम

करे और जो मार्क्सवादी थे, वे भी अपना अलग संगठन बनाकर अपने उद्देश्य की पूर्ति करें।

इसी दौरान एम.एन. राय (नरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य) जो पहले बाघा जतीन के संगठन के एक सदस्य थे और जो कई वर्षों से अमेरिका के मैक्सिको में रह रहे थे, वे राय के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ गये। उन्होंने मैक्सिको में कम्यूनिस्ट पार्टी की स्थापना करने में अग्रिम भूमिका निभाई। इसके बाद राय ताशकन्द चले गये, जहाँ उन्होंने भारतीय कम्यूनिज्म के सम्भावित स्वरूप का प्रारूप तैयार किया। उनके संगठन में शामिल थे – Evelyn Trent (उनकी पत्नी), अवनी मुखोपाध्याय, शौकत उस्मानी को प्रवासी कम्यूनिस्ट पार्टी के रूप में स्वीकृति मिली।

१९२१ के प्रारम्भ में सोवियत नेताओं के आमन्त्रण पर भूपेन्द्र भारतीय क्रान्तिकारियों के एक प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य के रूप में मास्को गये। इस प्रतिनिधि मण्डल में शेष सदस्य थे – चट्टो, पी.एस. खनखोजे, बरकतुल्लाह एव वीरेन्द्र दासगुप्त जैसे क्रान्तिकारी। ये लोग एम.एन.राय के प्रारूप से सहमत नहीं थे और इसलिए चट्टो एवं भूपेन्द्र ने अपने-अपने प्रारूप बनाकर comminist के अधिकारियों को दे दिए। भूपेन्द्र राय इससे बहुत असहमत थे, क्योंकि राय राष्ट्रवादियों के साथ काम नहीं करना चाहते थे, वे राष्ट्रवादियों को अपने श्रमिक वर्ग का रक्षक समझते थे। जबकि भूपेन्द्र यह मानते थे कि राष्ट्रवादियों को साथ लिए बिना जन-आन्दोलन चलाना सम्भव नहीं है। वे बड़ी रुचि से असहयोग आन्दोलन पर दृष्टि लगाये हुए थे, जो उस समय जोरों पर था। वे इस बात को अस्वीकार नहीं कर सके कि गाँधीजी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन का आधार बढ़ा था और उसमें जन-साधारण की भागीदारी बड़े रूप में हुई थी। बल्कि, भूपेन्द्र ने १९२० के नागपुर के कांग्रेस में एक ज्ञापन-पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने अनुरोध किया कि कांग्रेस कार्यकर्ता किसानों और श्रमिकों को संगठित करें और उन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन में लाएँ। यह एक सूचक था कि मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित होने पर भी भूपेन्द्र ने गाँधीजी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन और जनसाधारण के एक व्यापक मंच के रूप में राष्ट्रीय कांग्रेस की शक्ति को कभी कम नहीं आँका था। उनका मुख्य उद्देश्य था गरीब जनसाधारण के हितों को राष्ट्रीय आन्दोलन के केन्द्र में लाना।

भूपेन्द्र ने अपना प्रारूप लेनिन को भी भेजा, जिन्होंने कुछ दिनों के अन्दर ही उनको उत्तर भेजा। २६ अगस्त, १९२१ को लिखा यह पत्र The Complete Works of V.I.Lenin के ४५ वें खण्ड में आता है। लेनिन ने इस पत्र में उन्हें सुझाव दिया कि भारतीय क्रान्तिकारी किसानों और श्रमिकों के तथ्य संग्रह करें और उनके बीच काम करें। लेनिन ने औपनिवेशिक देशों से सम्बद्ध अपने एक प्रारूप की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया और उसमें दिये गये दिशा-निर्देशों के अनुसार काम करने को कहा। किसी और स्थान पर लेनिन ने एम.एन.राय की आलोचना करते हुए कहा कि वे भारत के राष्ट्रीय bourgeois की भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में भूमिका नहीं समझ सके। उन्होंने भारतीय क्रान्तिकारियों को किसानों के बीच काम करने और श्रमिक-संघर्ष का भाव-प्रचार करने के लिए कहा।

चट्टो सोवियत संघ में ही रुक गए और Comintern के साथ कई साल जुड़े रहे। उनका दुर्भाग्यजनक अन्त १९३७ में आया, जब स्टालिन के Great Purge में उन्हें मृत्यु दण्ड दिया गया। इसी समय एम. एन.राय का संगठन भारत में प्रचार कार्य करते रहा, जिसके लिए सोवियत सरकार ने उन्हें आर्थिक सहायता की। अपने जीवन के सन्ध्याकाल में राय भारत लौटे, उनका कम्यूनिज्म से मन उठ चुका था। उन्होंने अपना एक राजनीतिक सिद्धान्तों पर आधारित क्रान्तिकारी मानवतावादी (Radical Humanism) के नाम से एक दल तैयार किया।

वलादिमिर लेनिन

मास्को जाने के पहले १९२१ में, भूपेन्द्र और बर्लिन कमिटी के कुछ और पूर्व सदस्यों ने बर्लिन में Indian News and Information Bureau नामक एक संगठन आरम्भ किया। यह संगठन जर्मनी में पढ़ रहे भारतीय छात्रों की सहायता करता था और साथ-ही-साथ कुछ प्रकाशन कार्य भी करता था। एक और छोटा संगठन Hindustan Association of Central Europe भारतीय छात्रों के साथ आरम्भ किया गया। इसका एक ग्रन्थालय और सभागृह भी था। एक बार तत्कालीन कांग्रेस के राष्ट्रवादी नेता जिन्ना ने

शेष भाग पृष्ठ २२५ पर

भजन एवं कविता

श्रीहनुमन्निवेदनम्

डॉ. सत्येन्दु शर्मा

सबके संकटहारी देवा पवनतनय हनुमान ।
मेरी विनती पूरी कर दो, दर्शन दें श्रीराम ।।
राम न टालें बात तुम्हारी सुमिरन कर उपकार ।
वर देकर माता सीता भी अतिशय करें दुलार ।।
लखन लाल, सब छोटे भइया सदा करें सम्मान ।
कौसल्यादि मातु भी समझें, तुमको अपने प्राण ।।
यदा सखा सुग्रीव, विभीषण विदा हुए निज गेह ।
नहीं अकेला छोड़ा तुमको, तुम पर पुत्र-सनेह ।।
परम धाम जब राम गये, तो झुका दिये थे माथ,
राम-नाम जप करना चाहूँ, भूतल पर ही नाथ ।।
केवल राम-भजन-रत रहते, सेवत सन्त-मुनि को।
संकट हरते भक्तजनों के हरि बसत जिन मन को ।।
राम-रसिक के सभी मनोरथ-सिद्धि का व्रत तेरा ।
तुमसे ही जीवन में पाये भक्ति पुण्य सवेरा ।।
मैं भी राम भरोसे हनुमत् चुटकी-कर दो काम।
बात चलाकर पक्का कर दो, मिल जायें श्रीराम ।।

कृपालु हरि

सदाराम सिन्हा 'स्नेही'

हे दीनबन्धु दीनानाथ कृपालु हरि ।
तेरी कृपा से जीवन की बगिया हुई हरी-भरी ।।
हम जो सोचते करते ओ काम पूरा होता नहीं ।
जहाँ तेरी कृपा बरसे, कामना होती पूरी ।।१।।
दुर्गम पथ है जीवन का, जंग जीतना कठिन है ।
भक्तों की तरुणी पार करते सहज ही कृपालु हरि।।२।।
तुमने सदन कसाई और, पतित गणिका को तारा ।
भक्त प्रहलाद को उबारा, स्वयं रूपधर नरहरि ।।३।।
राम रूप में तुमने, अहल्या का उद्धार किया ।
गिद्ध गुहा निषाद को तारा, भक्तिन बन गई शबरी ।।४।।
पाण्डवों को विजय दिलाये, सूर को राह दिखाए ।
बैजू बावरा हो गया, मीरा हो गई बावरी ।।५।।
हजारों-हजारों भक्तों की, नित तार रहे जग में ।
'सदाराम' अब कृपा कर दो, दुख दर्द आन पड़ी ।।६।।

सृष्टि-दर्शन

आनन्द तिवारी पौराणिक

सृष्टि तेरी मैं देख चकित ।
विशाल धरा, नभ सूर्य, चन्द्र तारों से जड़ित ।।
मातृगर्भ में नन्हे जीवन का अद्‌भुत रक्षण ।
लक्षचतुर्शीति योनियों का विधिवत पोषण ।।
जल, थल, नभ के जीवधारियों का स्पन्दन ।
हर्ष, विषाद, हँसी, आँसू, सुख-दुख क्रन्दन ।।
हानि, लाभ, जीवन, मरण सब प्रारब्ध रचित ।
विशाल धरा, नभ, सूर्य, चन्द्र, तारों से जड़ित ।।
वन, उपवन की सुन्दरता, लहरों का नर्त्तन ।
पुष्पों की सुरभि श्रीशोभा हरता मन ।।
मलयगन्ध शीतल पवन में मृदु स्पर्श तुम्हारा ।
करुणा, दया, स्नेह प्रभु पाता जग सारा ।।
अनबूझ पहेली तेरी, बुद्धि मेरी भई थकित ।
विशाल धरा, नभ, सूर्य, चन्द्र, तारों से जड़ित ।।
गज के खातिर मन भर, चींटी पाती कण भर ।
सृष्टि व्यवस्था अति विचित्र हे विश्वम्भर ।।
उषा, सान्ध्य, दिन, रात, ग्रीष्म, वर्षा क्रम चलता ।
कण-कण, अणु, परमाणु, अनहद-नाद सुनता ।।
अस्तित्व-बोध तेरा हो जाता, आत्म-परमात्म सहित ।
विशाल धरा, नभ, सूर्य, चन्द्र तारों से जड़ित ।।

संसार नहीं, स्वयं को बदलो

स्वामी सत्यरूपानन्द

बिना कर्म के आदमी क्षण भर भी नहीं रह सकता। इसलिए सत्कर्म करो। मन में ऐसी शक्ति भगवान ने हमें दिया है, तुम चाहे भगवान को प्राप्त करो या शैतान को प्राप्त करो। सभी गुण-दोषों का हमारा मन ही उत्तरदायी है। पति-पत्नी धार्मिक संस्कार के बाद जीवनभर एक साथ रहेंगे और मरेंगे। केवल संसार में ही जनप्रिय मत बनो। अपने पति-पत्नी जीवन में, अपने बच्चों में भी प्रिय बनो। अपने चरित्र से प्रिय बनो। आजकल मर्यादा का ह्रास हो रहा है। इससे जीवन का सर्वनाश हो रहा है। जीवन के हर क्षेत्र में मर्यादायें रखो। मर्यादा हट गई, तो नियन्त्रण कहाँ रहा। मर्यादा में रहना चाहिए। संयमित जीवन जीना चाहिए। जहाँ आकर्षण रहता है, वहाँ विवेक-विचार करना आवश्यक है। धर्म वही सार्थक है, जो जीवन में, व्यवहार में आचरित हो।

यदि जीवन में सभी सुख सम्पदायें, नाम-यश सब राजाओं के समान हो, किन्तु यदि जीवन में भगवान नहीं हैं, सब किस काम का? सदा अर्जुन के समान वीरता न रहेगी, बुढ़ापा बहुत कष्टप्रद होगा। अगर भगवान का नाम लेने का प्रयास नहीं किया तो जानते हो क्या होगा?

पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्।

पुनरपि जननी जठरे शयनम्।।

इसलिये हमेशा यह ध्यान रखो कि साधना एक दिन भी न छूटे। इसके लिए भगवान के पास प्रार्थना करनी है। जीवन कुरुक्षेत्र है, हमे निरन्तर संघर्ष करते रहना पड़ता है, कभी बाहर, तो कभी भीतर। अपने संसार को अब बहुत फैलाओ मत, उसे अब समेटने का प्रयास करो। अब केवल भगवान का नाम और भगवान का चिन्तन करो। अपने भावों में परिवर्तन लाओ, नहीं तो जीवन में भी परिवर्तन नहीं होगा। मैं, मेरा, तू-तेरा यही माया है। तुमने अपने मन को संसार में सबसे जोड़ दिया है, संसार ही तुम्हारा निवास हो गया है, इसलिए कष्ट पाते हो।

जब बोध होगा कि मैं शरीर नहीं, मैं आत्मा हूँ, जब इसकी अनुभूति होगी, तब तुम आनन्द में रहोगे। इसके लिए सतत प्रयत्न और अभ्यास करना पड़ेगा। एक दिन सब छोड़ना तो पड़ेगा ही, ये सोचकर रखना चाहिए और वैसा ही प्रयत्न करना चाहिए। हमको प्रतिदिन स्मरण-मनन रखना है, तब हम मरने के बाद अपने इष्ट के चरणों में ही जायेंगे। शरीर छूटते ईश्वर का ध्यान नहीं रहेगा, तो पुनर्जन्म लेना पड़ेगा।

हम संसार को बदलना चाहते हैं, लेकिन मूल बात है कि हमें बदलना है। हमें संसार के शोर से विचलित नहीं होना है। थोड़ा-सा कुछ होने पर हमारा अहंकार बहुत बढ़ जाता है और हम दूसरे को सुधारने में उलझ जाते हैं। हम अपना मूल उद्देश्य भूल जाते हैं। हम अपने मन को संसार के अनुकूल न करेंगे, तो कष्ट पाएँगे। प्रतिकूलता में अपने धैर्य की परीक्षा होती है। ऐसा अभ्यास हमें रोज करना पड़ेगा। २४ घंटे जीवन में साधना के अवसर हैं, जितनी हो सके, उतनी साधना करें। संकल्प करने से मन दृढ़ रहता है। मन को सुधारने का एक मात्र उपाय यही है। हम संसार की बाधाओं को हटा नहीं सकते, तो अपने मन में सहने का दृढ़ अभ्यास करना चाहिए। ○○○

भय मत करो। मानव-जीवन तो कष्टों से भरा पड़ा है और यहाँ भगवान के नाम लेते हुए सब कुछ धैर्यपूर्वक सहना पड़ता है। कोई भी, यहाँ तक मानवरूप में भगवान भी शरीर और मन के कष्टों से नहीं बच सके हैं। अवतारों, सन्तों और महापुरुषों को भी कष्ट भोगना पड़ता है, क्योंकि वे सामान्य मानवों की त्रुटियों और भूलों के पाप का भार स्वयं उठा लेते हैं और इस प्रकार वे मानवता के कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग कर देते हैं।

भगवान ने ऊँगलियाँ दी हैं, इसलिए मन्त्र जपकर इनको सार्थक करना चाहिए।

– श्रीमाँ सारदा देवी

भगवान बुद्ध
जयन्ती विशेष

हम सबके बुद्ध

ज्योति सिंह

सहायक आचार्य, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी

एडविन आर्नल्ड ने अपने काव्य ग्रंथ 'लाइट ऑफ एशिया' में भगवान बुद्ध को एशिया की जगमगाती ज्योति के रूप में प्रस्थापित किया है। वास्तव में बुद्ध को एशिया का गिनना यह सूर्य के प्रकाश को पृथ्वी के सँकरे सन्दर्भ में तौलने के समान है। बुद्ध अपने युग के महान जनवादी महामानव थे। किसी ईश्वर या दिव्य शक्ति पर न उनका विश्वास था और न उससे संसार की भलाई की वह आशा रखते थे।

बुद्ध के तत्कालीन समाज में अन्धविश्वासपूर्ण रीति-रिवाज, मान्यताएँ और आस्थाएँ परम्परागत रूप से चली आ रही थीं। उन अन्धविश्वासों और अन्धपरम्पराओं के फलस्वरूप स्त्रियों, शूद्रों, दासों और अस्पृश्यों का जीवन दुखमय और यंत्रणाओं से भरा था। जीवन के ३६वें वर्ष में बोधिलाभ कर 'सम्यक् सम्बुद्ध' होने के बाद, उन्होंने अनुभव किया कि सम्पूर्ण जगत दुख की ज्वाला में जल रहा है। इसलिए बुद्ध ने लोक-कल्याणार्थ जब उपदेश दिया, तो उन्होंने अपने उपदेश का लक्ष्य दुख और उसके निवारण

सारनाथ

को ही बनाया। बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश, जो बौद्ध धर्म में 'धर्मचक्रप्रवर्तन' के नाम से प्रसिद्ध है, बनारस के निकट इसिपत्तन या ऋषिपत्तन (वर्तमान में सारनाथ) में अपने पुराने 'पाँच ब्राह्मण' साथियों को दिया। उन्होंने कहा कि ''इन दो अतियों का सेवन नहीं करना चाहिए : (१) काम-सुखों में अधिक लिप्त होना और (२) शरीर से कठोर साधना करना। इन्हें छोड़कर जो 'मध्यम मार्ग' मैंने खोज निकाला है, उसका सेवन करना चाहिए। यह मध्यम मार्ग आँख देनेवाला, ज्ञान करानेवाला, शान्ति देनेवाला है।''

बुद्ध ने न केवल अपना प्रथम उपदेश इसिपत्तन में दिया, अपितु वहीं उन्होंने अपने शिष्यों का प्रथम दल संघटित किया और उन्हें इस आदेश के साथ विभिन्न स्थानों में भेजा, ''जाओ भिक्षुओ, भ्रमण करो, बहुजन के हित के लिए, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर अनुकम्पा करने के लिए, देवों और मनुष्यों के हित एवं सुख के लिए, तुममें से कोई दो एक साथ मत जाओ। भिक्षुओ, उपदेश करो धर्म का, जो आदि में कल्याणमय है, मध्य में कल्याणमय है, अन्त में कल्याणमय हैं।''

बुद्ध द्वारा उपदिष्ट 'मध्यम मार्ग (अष्टांगिक मार्ग) पूर्णतया साधारण जन के लिए है, जिसे बुद्ध ने 'बहुजन' कहा है। उनका सम्पूर्ण जीवन और उपदेश 'बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय' के आदर्श पर आधारित था। बुद्ध के धम्म, जीवन-दर्शन और समाज-दर्शन में सभी मनुष्य समान होते हैं। उनमें जाति, लिंग और धर्म के नाम पर किसी भी प्रकार का भेद नहीं होता। वास्तव में बुद्ध के धर्म और समाज-दर्शन का सर्वोच्च साध्य मानव कल्याण है। क्योंकि उनके जीवन-दर्शन, नीतिशास्त्र और मूल्यों का स्त्रोत ईश्वर और आत्मा न होकर मनुष्य और समाज ही है।

बुद्ध-दर्शन का आधार – प्रज्ञा, शील, मैत्री, करुणा

भगवान बुद्ध के समाज-दर्शन का मूलाधार है – प्रज्ञा, शील, मैत्री और करुणा। ये चारों मूल्य बौद्ध धर्म के सर्वोच्च मूल्य हैं। इन चारों मूल्यों में मनुष्य और समाज के मानसिक एवं भावनात्मक पक्ष का समावेश हो जाता है। **प्रज्ञा** सम्यक् दृष्टि (सत्यज्ञान) एवं सम्यक् संकल्प की प्राप्ति और इनको सुदृढ़ करने में सहायता प्रदान करती है। इसको आज की वैज्ञानिक भाषा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और वैज्ञानिक मनोभाव कहा जा सकता है। भगवान बुद्ध के दर्शन में सम्यक् दृष्टि– कायिक, वाचिक, मानसिक, भले बुरे-कर्मों के ठीक-ठीक ज्ञान को सम्यक् दृष्टि कहते हैं।

बुद्ध के समाज-दर्शन का दूसरा आधार है **शील**। शील उच्चकोटि के चरित्र-निर्माण के मार्ग का प्रतिपादन करता है, जिसका अनुशीलन करके मनुष्य एवं समाज आदर्श समाज के निर्माण में प्रभावकारी भूमिका का निर्वाह कर सकता है। इसके अन्तर्गत मनुष्य को झूठ, चुगली, कटुभाषण और बकवास से रहित होकर सत्य एवं मृदु बातें बोलनी चाहिए। इतना ही नहीं, बल्कि मनुष्य को हिंसा, चोरी, व्यभिचाररहित शुभ कर्म करना चाहिए। समाज में सुख-शान्ति और विकास के लिए मनुष्य और समाज को ऐसे व्यवसायों के करने से बचना चाहिए, जो हिंसा एवं नशाखोरी जैसे दुर्व्यसनों को बढ़ावा देते हैं। इसलिए बुद्ध ने अपने समाजदर्शन में हथियारों का व्यापार, प्राणी का व्यापार, मांस का व्यापार, मद्य का व्यापार और विष का व्यापार वर्जित बताया है।

जिस प्रकार से बुद्ध के समाज-दर्शन में प्रज्ञा एवं शील विवेक पर निर्भर करते हैं, उसी प्रकार **मैत्री** और **करुणा** का आधार व्यक्ति एवं समाज के भावनात्मक पक्ष पर आश्रित है। बुद्ध के समाज-दर्शन के अन्तर्गत विवेक और भावना का सुन्दर एवं अनूठा समन्वय है। बुद्ध के अनुसार कर्म शुभ एवं मंगलमय होना चाहिए, चाहे उसका प्रेरक विवेक हो या भावना हो, अथवा दोनों। यथार्थ में बुद्ध का समाजदर्शन महानतम, समन्वयवादी एवं मध्यम मार्गी है। यथार्थ सत्य यह है कि मनुष्य के द्वारा किया गया कर्म शुभ एवं मंगलमय होना चाहिए, जिससे समाज में सुख एवं शान्ति की स्थापना हो सके और मूल्यों के साम्राज्य की स्थापना की जा सके। बुद्ध के समाजदर्शन में सभी मनुष्य समान होते हैं। उनमें जाति, वर्ण, लिंग और धर्म के आधार पर किसी भी प्रकार का भेद नहीं होता। मनुष्य का मूल्यांकन करने का आधार शुभ-अशुभ और मंगल-अमंगल कर्म ही होते हैं। इस धर्म के समाज-दर्शन में अन्धविश्वास और पाखण्डों के लिए तनिक भी स्थान नहीं है।

बुद्ध का समाज-दर्शन : मानवीय, वैज्ञानिक एवं जनतान्त्रिक

बुद्ध का समाजदर्शन सबसे अधिक मानवीय, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ओत-प्रोत एवं प्रज्ञापूर्ण है, जिसके परिणामस्वरूप यह जनतान्त्रिक मूल्यों के अनुकूल बैठता है। बुद्ध अपने युग के सबसे बड़े जनवादी महामानव थे। उनका झुकाव कर्मकाण्ड एवं भक्ति की अपेक्षा ज्ञान और बुद्धिवाद की ओर अधिक था। इसलिए वे स्वभावत: जनतान्त्रिक थे। बुद्ध का जन्म एक प्रजातन्त्र में और महापरिनिर्वाण भी मल्लों के गणतन्त्र कुसीनारा में हुआ था। प्रजातन्त्र प्रणाली इन्हें अति प्रिय थी। यह इसी से ज्ञात होता है कि उसके विरोधी वैशाली के लिच्छिवियों की प्रशंसा करते हुए राष्ट्र को अपराजित रखनेवाली उन्होंने सात बातें बताई थीं, जो क्रमश: इस प्रकार है – (१) बराबर एकत्रित हो सामूहिक निर्णय करना, (२) निर्णय के अनुसार कर्तव्य को एक होकर करना, (३) व्यवस्था (कानून और विनय) का पालन करना, (४) वृद्धों का सत्कार करना, (५) स्त्रियों पर जबरदस्ती नहीं करना, (६) राष्ट्रीय धर्म का पालन करना, (७) धर्माचार्यों का सत्कार करना। इन सातों बातों में सामूहिक कर्तव्य-पालन, स्त्री, स्वातन्त्र्य प्रगति के अनुकूल विचार थे। इनमें स्वतन्त्रता की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

भारतीय जनतन्त्र के समानता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्व, सामाजिक न्याय और धर्म-निरपेक्षता मूलाधार हैं। प्राचीन काल से लेकर आज तक बुद्ध का धर्म समानता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्व, न्याय और धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों का प्रचार-प्रसार करता रहा है। उसका सबसे बड़ा प्रभाव यह है कि बुद्ध ने अपने संघ के दरवाजे ब्राह्मण, क्षत्रियों और वैश्यों के साथ-साथ शूद्रों, स्त्रियों और चाण्डाल आदि निम्न जाति के सभी लोगों के लिए खोल रखे थे। तथागत ने जितने भी नियम भिक्खु संघ के लिए बनाए थे, स्वेच्छा से उन सभी को अपने ऊपर भी लागू किया। इसलिए वे संघ के नायक हैं, उन्होंने कभी किसी नियम का अपवाद नहीं चाहा। यदि वे चाहते, तो उस असीम आदर और प्रेम की भावना के कारण जो संघ के सदस्यों के मन में उनके लिये थी, वे तथागत को बड़ी प्रसन्नता से नियमों से मुक्त कर देते। इस बात को सिद्ध करने का सबसे बड़ा उदाहरण यह है – भिक्खु एक ही बार भोजन ग्रहण कर सकते हैं, यह नियम अन्य सभी भिक्खुओं के साथ-साथ तथागत को भी स्वीकृत था। भिक्खु के पास निजी सम्पत्ति नहीं रहनी चाहिए, यह नियम अन्य सभी भिक्खुओं के साथ-साथ तथागत को भी स्वीकृत था।

समानता का कीर्ति-स्तम्भ

बुद्ध ने समानता के मूल्य की स्थापना में क्रान्तिकारी कार्य किया। जिसके फलस्वरूप उनके संघ में समस्त वर्णों और जातियों के लोग एवं कर्म की दृष्टि से हेय, नीच और असामाजिक समझे जानेवाले अपराधी भी प्रव्रजित हुए और उन्हें अत्यन्त सम्माननीय एवं आदरणीय स्थान प्राप्त हुआ।

बुद्ध अपने धर्म की महासंमुड के साथ तुलना करते हुए कहते हैं, भिक्खुओं ! जैसे जितनी बड़ी-बड़ी नदियाँ, महासमुद्र में आकर विलीन हो जाती हैं, वैसे ही क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों के लोग इस धर्म विलय में घर से बेघर होकर प्रव्राजित होते हैं और वे अपने पहले नाम और गोत्र को छोड़ सभी 'बौद्ध-भिक्खु' इस नाम से जाने जाते हैं। बुद्ध के धर्म की समानता इस बात से प्रकट होती है कि उन्होंने अपने धर्म में सभी वर्णों, जातियों, सम्पन्न और निर्धनों, स्त्री और पुरुषों, साधु और डाकुओं एवं रानी और मेहतरानी आदि लोगों को दीक्षा अथवा प्रव्रज्या देकर समानता का कीर्तिस्तम्भ खड़ा कर दिया।

नारी-उद्धारक बुद्ध

बुद्ध के समय तक स्त्रियों की स्थिति बहुत दयनीय थी। लेकिन बुद्ध ऐसे प्रथम नारी उद्धारक हुए, जिन्होंने स्त्रियों को संघ में प्रव्रज्या देकर भारत के इतिहास का प्रवाह ही परिवर्तित कर दिया था। भिक्षुणी संघ की स्थापना से बुद्ध ने महिलाओं को जिस स्तर पर धर्मपरायणता का अवसर प्रदान किया, वह विश्व इतिहास में आनेवाले लम्बे समय तक एक अद्वितीय बात रही। महाप्रजापति गौतमी, यशोधरा आदि अन्य राज्यघराने की स्त्रियों को प्रव्रज्या उपसंपदा देकर महिलाओं के लिए अलग संघ की स्थापना की। इस संघ में लगभग पाँच सौ स्त्रियाँ थीं। श्रावस्ती की प्रकृति नामक चाण्डाल कन्या को भिक्खुणी संघ में प्रवज्या देकर अपनी उदारता का उदाहरण प्रस्तुत किया। बुद्ध के द्वारा महारानी और मेहतरानी को एक ही संघ में प्रव्रजित करना समानता का बेजोड़, अतुलनीय एवं दुर्लभ उदाहरण था।

तुम स्वयं अपने स्वामी हो

मानवीय स्वतन्त्रता पर बुद्ध ने बहुत बल दिया और उनके सद्धर्म का महत् उद्देश्य व्यक्ति को सभी प्रकार के बन्धनों, दुखों से मुक्ति दिलाना था, उन्होंने **'आत्मदीपो भव'** का उपदेश देते हुए कहा ''तुम आप ही अपने स्वामी हो, आप ही अपनी गति। इसलिए अपने को संयमी बनाओ।'' बुद्ध ने 'आत्मदीपो भव' कह कर भाग्यवाद का निषेध किया और कर्म व उसके प्रभाव को महत्त्व दिया। उनके अनुसार – 'कर्म ही से लोकों की सत्ता है, कर्म ही से लोकों के मनुष्यों की सत्ता है। सभी जीव पूर्वकर्मों से बँधे हुए हैं, जैसे चलता हुआ रथ अपने धुरे से।'

मंगलमय कर्म

महामंगल सुत्त में अड़तीस बातों को मंगलमय कर्म माना गया है। उनमें से कुछ इस प्रकार के कार्य हैं – जैसे बन्धु-बाधवों का सम्मान और सहायता करना, नम्र रहना, सन्तुष्ट रहना और कृतज्ञता करना, ये ऐसे गुण हैं, जिनमें भ्रातृत्व भाव को बल मिलता है। बुद्ध ने भ्रातृत्वभाव की स्थापना और उसे सशक्त बनाने के लिए कहा, ''तुम बुद्ध, धम्म और संघ का आश्रय लेकर अपने परिश्रम से अपने तथा दूसरों के दुख का नाश करो, जगत का दुख दूर करो''। जैसा कि बुद्ध ने बताया है कि धर्म का अनुशीलन भ्रातृत्वभाव को सशक्त बनाता है। इसके लिए ईष्या, मोह, लोभ, क्रोध आदि मानसिक वासनाओं को त्यागना अनिवार्य है। उसी अवस्था में भ्रातृत्वभाव की स्थापना हो सकती है। बुद्ध के जनतान्त्रिक दृष्टकोण का पता इस कथन से चलता है कि उन्होंने स्वयं भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए कहा था, ''किसी भी विवाद के बारे में स्वयं संघ को ही निर्णय करना होगा। संघ को इकट्ठे होकर विचार करना चाहिए और जब तक किसी निर्णय पर न पहुँचा जाए, तब तक उस सम्बन्ध में अच्छी तरह विचार करना चाहिए और बाद में उस निर्णय को स्वीकार करना चाहिए। विवादों का निर्णय बहुमत से होना चाहिए।'' इससे प्रमाणित होता है कि भगवान बुद्ध और उनका धर्म विशुद्ध रूप से जनतान्त्रिक मूल्यों पर निर्भर करता है। बौद्ध धर्म के समाजदर्शन और जनतान्त्रिक मूल्यों में उच्च कोटि का सकारात्मक सह सम्बन्ध है। बुद्ध का समाजदर्शन भारतीय जनतन्त्र को सशक्त बनाने, भारतीय समाज के सर्वांगीण विकास और शब्द की उत्कृष्ट उन्नति के लिए सकारात्मक भूमिका का निर्वाह कर सकता है।

'भवतु सब्ब मंगल' (सभी प्रणियों का कल्याण हो।) यही भावना बुद्ध की थी। उनके अनुसार 'संसार में वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता, अवैर से ही वैर शान्त होता है।' बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा – ऊपर-नीचे और चारों लोक को मित्रता की भावना से भर दो। किसी का दुख चिन्तन मत करो। भावना करो कि सभी प्राणी सुखी हों।' बुद्ध की समस्त शिक्षाओं को अत्यन्त संक्षेप में, 'धम्मपद' की गाथा में इस प्रकार कहा गया है :

शेष भाग पृष्ठ २२५ पर

मैं अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्रसेवा में समर्पित करूँगा

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

एक बार बाल गंगाधर तिलकजी यवतमाल (महाराष्ट्र) से कारंजा स्टेशन होते हुए मूर्तिजापुर जा रहे थे। उस दिन कारंजा स्टेशन पर उनके स्वागत तथा उनके द्वारा जनता को सम्बोधित करने की योजना बनाई गई थी। लेकिन ब्रिटिश सरकार ने सभी विद्यालयों तथा अन्य सभी सरकारी कार्यालयों के प्रमुखों को आदेश दिया था कि किसी को भी लोकमान्य तिलक के भाषण सुनने की अनुमति न दी जाए।

विद्यालय में मध्याह्न की छुट्टी की घण्टी नहीं बज रही थी। अन्ततः किसी प्रकार घण्टी बजी, लेकिन विद्यालय के प्रवेश द्वार पर ताला लगा था। छात्रों ने देखा कि प्रधानाध्यापक अपने पैसे से छात्रों को लाई-चना खिला रहे थे। सायंकाल के चार बजे गये, परन्तु छुट्टी की घण्टी अभी तक नहीं बजी। इसके बाद एक छात्र के धैर्य का बाँध टूटा। उसने कक्षा में पढ़ा रहे अध्यापक से पूछा – 'श्रीमान् जी, छुट्टी का समय हो गया है। मुझे किसी आवश्यक कार्य से बाहर जाना है।' यह सुनते ही अध्यापक क्रोधित हुए। उन्होंने छात्र को कान पकड़कर कक्षा से बाहर निकाला और चपरासी को आदेश दिया कि इसे प्रधानाध्यापक के पास ले जाओ।

प्रधानाध्यापक ने छात्र से पूछा – क्यों, क्या बात है, क्या चाहते हो? छात्र ने अपनी बात पुनः कही – 'छुट्टी का समय हो गया है। मुझे किसी आवश्यक कार्य से बाहर जाना है।' प्रधानाध्यापक ने कहा – 'इतनी जल्दबाजी क्यों? एक दिन थोड़ा ज्यादा पढ़ने से तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा। तुम बाहर क्यों जाना चाहते हो?'

निर्भीक छात्र ने उत्तर दिया – मैं, लोकमान्य तिलक जी के दर्शन के लिए कारंजा स्टेशन जाना चाहता हूँ।

प्रधानाध्यापक छात्र की यह बात सुनकर आगबबूला हो गये और उन्होंने कहा – अच्छा, तो यह बात है। तुम अपने आपको बड़े राष्ट्रभक्त समझते हो। कहते हो लोकमान्य तिलक का भाषण सुनने जाना है। लगता है बाप की अच्छी-भली चल रही नौकरी, तुम्हें अच्छी नहीं लग रही है। अब उन्हें नौकरी से निकाल देंगे। उम्र भर धूल फाँकते रहने के लक्षण दिखाई दे रहे हैं तुम्हारे। इतना कहकर प्रधानाध्यापक ने एक छड़ी उठाई और उसे खूब पीटा। उसी समय कारंजा स्टेशन

से रेल छूटने की आवाज सुनकर प्रधानाध्यापक ने अपना हाथ पीछे किया, क्योंकि जिस रेल से तिलकजी आ रहे थे वह रेल अब स्टेशन से छूट गई और उस विद्यालय का कोई भी विद्यार्थी स्टेशन नहीं जा पाया था। प्रधानाध्यापक ने चपरासी को छुट्टी की घण्टी बजाने का आदेश दिया और उन्होंने व्यंगात्मक शब्दों में छात्र से कहा – 'उठो देशभक्त, अब घर जाकर केवल पढ़ाई में ही मन लगाओ। मैंने जो किया, वह तुम्हारी भलाई के लिए ही किया है।'

छात्र ने भी निडरता से उत्तर दिया – 'जी हाँ, आपने जो किया, वह मेरी भलाई के लिए ही किया है। यद्यपि आपने मुझे यहाँ बन्द करके रखा, लेकिन फिर भी मैंने मन ही मन यहीं से तिलकजी का दर्शन कर लिया है। मैं उनके जीवन के महत्त्व को अच्छी तरह से समझ गया हूँ और मैंने अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र-सेवा में समर्पित करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है।' इस दृढ़ निश्चयी तथा निर्भीक छात्र का नाम था उमाकान्त केशव आपटे। उपर्युक्त घटना के समय उनकी आयु मात्र १२ वर्ष की थी।

श्री उमाकान्त केशव आपटे का जन्म २८ अगस्त, १९०३ में यवतमाल के एक गरीब परिवार में हुआ था।

श्री उमाकान्त आपटे एक आदर्श शिक्षक थे। उन्हें बाबा साहब आपटे के नाम से भी जाना जाता था। वे विद्यालय में बड़ी ही रुचि से छात्रों को पढ़ाते थे। सभी छात्र उन्हें पसन्द करते थे। वे पाठ्यक्रम के अलावा विद्यार्थियों को प्रेरणादायी, राष्ट्रभक्त तथा आदर्श व्यक्तित्व के बारे में भी पढ़ाते थे। एक बार विद्यालय में १ अगस्त, १९२४ को

शेष भाग पृष्ठ २३३ पर

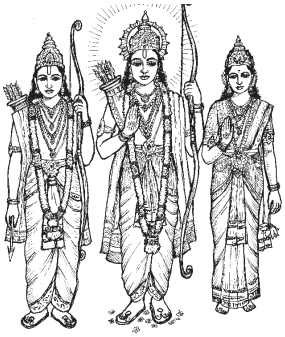

रामराज्य का स्वरूप (५/४)

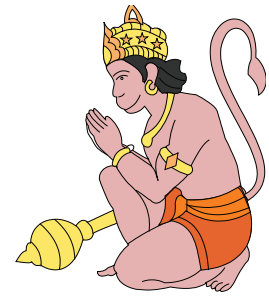

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

श्रद्धेय स्वामीजी महाराज, उपस्थित भक्तिमती देवियो और बन्धुओ, पिछले चार दिनों से रामराज्य की जो गाथा प्रारम्भ की गई थी, उसकी पृष्ठभूमि और उसका सार-संक्षेप आपने श्रद्धेय स्वामीजी के मुख से अभी सुना। मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि जो लोग विलम्ब से आने के अभ्यस्त हो चुके हैं, वे एक बड़े लाभ से वंचित रहते हैं। कथा तो स्वयं ही संक्षेप है, पर उस संक्षेप को भी संक्षिप्त रूप में आदरणीय स्वामीजी जिस अद्भुत विधा से रख देते हैं, वह स्वयं अपने आप में अद्वितीय है और जो प्रारम्भ से नहीं आते, वे उस लाभ से वंचित रहते हैं। आज स्वामीजी महाराज ने श्रीरामकृष्ण देव का जो दिव्य संस्मरण सुनाया, उससे हम सब भावाभिभूत हो गए।

भक्ति के अद्वैत की ओर जो उन्होंने संकेत किया, भगवान श्रीरामकृष्ण के चरित्र में वह कितना स्पष्ट परिलक्षित होता है, उस दृष्टान्त से हमलोगों ने अनुभव किया। आइए, जो विषय परम्परा प्रारम्भ की गई थी, उस पर आज आगे दृष्टि डालने की चेष्टा करें। पर मैं आपसे यही कहूँगा कि आप मनोरंजन की इच्छा छोड़कर पूरी एकाग्रता और शान्ति से उसे सुनेंगे।

महाराज श्रीदशरथ रामराज्य की स्थापना में सफल नहीं होते। वे कौन-से विघ्न थे, कौन-सी बाधाएँ थीं, इसकी चर्चा पिछले दिनों चलती रही। यह रामराज्य की स्थापना का वह महान कार्य है, जो श्रीभरत के द्वारा सम्पन्न होता है। पर वह कैसे सम्पन्न होता है, आइए आज उसी पर दृष्टि डालने की चेष्टा करें। श्रीभरत का जन्म कैकेयीजी के गर्भ से हुआ है। एक ओर महाराज कैकय से कैकेयी का जन्म और किस तरह से महाराज कैकय का संस्कार कैकेयीजी के अन्त:करण में पूर्ण रूप से विद्यमान है, इसकी बात कल कही गई थी। तो प्रश्न यह किया जा सकता है कि कैकेयी का जन्म अगर महाराज कैकय से हुआ था, तो श्रीभरत जी का जन्म भी तो कैकेयीजी के माध्यम से हुआ था। तो ऐसी स्थिति में क्या कैकेयी के संस्कार का प्रभाव श्रीभरत के जीवन पर नहीं पड़ना चाहिए था? कैकेयी में जो कमियाँ हैं, क्या वह श्रीभरत के जीवन में आने की सम्भावना नहीं थी? गोस्वामीजी ने इस प्रश्न पर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है।

इसका उत्तर रामचरित मानस में दो रूपों में दिया गया है। एक रूप तो उसका यह है कि भरतजी का जन्म भले ही कैकेयीजी के माध्यम से हुआ हो, पर श्रीभरत का शरीर किसी शारीरिक प्रक्रिया के द्वारा हुआ है, इसका वर्णन नहीं किया गया है। आप रामचरितमानस में इस प्रसंग से परिचित हैं कि तीनों महारानियों ने जो गर्भधारण किया, उस गर्भधारण के मूल में महाराज श्रीदशरथ के द्वारा जो पुत्रेष्टि यज्ञ किया गया और उस यज्ञ में अग्निदेव जो चरु लेकर प्रगट हुए वही चरु (खीर) तीनों रानियों में वितरित किया गया। उस प्रक्रिया में खीर का वितरण जिस पद्धति से किया गया, उससे आप परिचित हैं। खीर का आधा भाग माता कौशल्या को दिया गया और बचे हुए खीर का दो भाग करके एक भाग महारानी कैकेयी को दिया गया तथा जो बचा हुआ भाग था, उसके भी दो भाग किए गये। वे दोनों भाग, एक भाग कौशल्याजी के हाथ में रख दिया और दूसरा भाग महारानी कैकेयी के हाथ में रख दिया। उनसे उन्होंने आग्रह किया कि आप लोग यह एक-एक भाग सुमित्राजी को दें। कौशल्याजी ने और कैकेयीजी ने वह भाग सुमित्राजी को दिया। इस तरह से तीन माताओं के माध्यम से चार पुत्रों का जन्म होता है।

मूल में जो तत्त्व है, वह एक ही है। यह जो वर्णन किया गया है, इसका अभिप्राय यह है कि साधारण तथा जीव

परम्परा में अनेक जीव हैं और उनका भिन्न-भिन्न गर्भों से जन्म होता है। वस्तुत: यह मूल तत्त्व खीर के रूप में शुद्ध सत्त्व दिखाई देता है। जब ब्रह्म परिपूर्ण शुद्ध सत्त्व के रूप में एक होता है, तो एक होते हुए भी वह अपने आपको चार रूपों में प्रगट करता है।

इसका अभिप्राय है कि श्रीभरत का जन्म तो वस्तुत: श्रीराम के अंश से हुआ है। इसीलिए भगवान राम में जो विलक्षणताएँ विद्यमान हैं, भगवान श्रीराम जैसे परिपूर्ण हैं, समस्त सद्गुणों के पुंज हैं, श्रीभरत के व्यक्तित्व में भी वही बातें विद्यमान हैं। कैकेयी के संस्कार से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। अगर हम मूल पर दृष्टि डालें, तो इसका समाधान हो जाता है।

पर एक दूसरा काव्यमय तर्क भी गोस्वामीजी ने किया। वह तर्क भी बड़े महत्त्व का है। भगवान राम जब वन चले गये, तो अयोध्या के नागरिकों में परस्पर यह चर्चा चलने लगी कि महारानी कैकेयी ने जो अनर्थ किया है, इसके मूल में महारानी कैकेयी ही हैं कि कहीं भरत का भी हाथ है? षड्यन्त्र की कल्पना अयोध्या के नागरिकों के मस्तिष्क में आ गई। मन्थरा ने उसे एक दूसरे रूप में प्रस्तुत कर दिया था। मन्थरा ने कहा कि राम को राज्य देने की योजना तो न जाने कब से चल रही थी, इसीलिए भरत को ननिहाल भेजने के बहाने अयोध्या से दूर भेज दिया गया और भरत की अनुपस्थिति में राम को राज्य देने की योजना बनाई जाती रही।

इसी घटना को अयोध्यावासियों ने दूसरे रूप में प्रस्तुत कर दिया। क्योंकि दोनों के मन में कल्पना ही तो है। मन्थरा की कल्पना यह है कि भरत को दूर भेजने में दशरथ और कौशल्या का हाथ है और अयोध्यावासियों के मस्तिष्क में यह बात आई कि वस्तुत: भरत को ननिहाल भेजने के पीछे स्वयं भरत और कैकेयी की मिली भगत है। कैकेयी और भरत ने मिलकर एक योजना बनाई, उस योजना में स्वयं भरत सामने नहीं रहना चाहते थे और वे चाहते थे कि उनकी अनुपस्थिति में ही राम को अयोध्या से दूर भेज दिया जाये, जिससे वे सुविधापूर्वक ननिहाल से लौटकर अयोध्या के सिंहासन पर बैठ सकें। इसलिए इस कार्य के पीछे वस्तुत: केवल मन्थरा ही नहीं है, स्वयं भरत का मस्तिष्क भी कार्य कर रहा है और उन्होंने तर्क भी दिया –

फरइ कि कोदव बालि सुसाली।
मुकता प्रसव कि संबुक काली।। २/२६०/४

जैसे घोंघी से मोती का जन्म नहीं हो सकता और जैसे कोदो के पौधे से धान उत्पन्न नहीं हो सकता, इसी तरह भरत अन्ततोगत्वा कैकेयी के ही पुत्र तो हैं। इसलिए कैकेयी के पुत्र भरत से इससे अधिक आशा रखना व्यर्थ है। अपने स्थान पर उन्होंने दृष्टान्त भी चुना।

उसके बाद महाराज श्रीदशरथ अपने शरीर का परित्याग भी कर देते हैं, मानो उसके पीछे भी कल जो प्रसंग चल रहा था, उसी का वह अन्तिम भाग है। कौशल्याजी ने दशरथजी से आग्रह किया कि आप शरीर की रक्षा करें, चौदह वर्ष बाद राम लौटकर आवेंगे। पर महाराज श्रीदशरथ के अन्त:करण में वैराग्य की भावना बहुत प्रबल हो गई कि उन्होंने अपने शरीर का ही त्याग कर दिया।

मनुष्य के राग का सबसे बड़ा केन्द्र व्यक्ति का शरीर है। संसार के अनगिनत वस्तुओं से व्यक्ति का राग होता है, पर उन सब रागों में शरीर का राग सबसे अधिक प्रबल है। मृत्यु का भय बुद्धिमान से बुद्धिमान व्यक्ति के अन्त:करण में होता है। यह है शरीर से राग की पराकाष्ठा पर उस शरीर को छोड़ने में महाराज दशरथ रंचमात्र नहीं रुके, तत्काल उन्होंने देह का त्याग कर दिया और गोस्वामीजी ने महाराज दशरथ की दो रूपों में वन्दना की। महाराज दशरथ ने कौशल्याजी से कहा – महारानी ! अपने स्थान पर आप ठीक कह रही हैं, पर अयोध्या में यह जितना अनर्थ हुआ है, इसके पीछे मेरी शारीरिक आसक्ति की जो भावना है, मेरे जीवन में शारीरिक विषयों के प्रति जो आकर्षण रहा, कैकेयी-सौन्दर्य के पीछे जो आकर्षण रहा, उसी के कारण इन सारे अनर्थों की सृष्टि हुई। इसलिए जिस शरीर में राम को पाने के बाद भी विषय को पाने की आवश्यकता का अनुभव किया, ऐसे शरीर को रखना, इससे बढ़कर अविवेक और कुछ नहीं होगा।

सो तनु राखि करब मैं काहा।
जेहिं न प्रेम पनु मोर निबाहा।। २/१५४/६

महाराज श्रीदशरथ ने वस्तुत: वैराग्य की पराकाष्ठा में, आसक्ति से रहित होकर अपने शरीर और प्राण का क्षणभर में परित्याग कर दिया और इस तरह से महाराज दशरथ वैराग्य का जो अन्तिम फलश्रुति ज्ञान है, इसकी दिशा में आगे बढ़े। इसकी चर्चा कल आपके सामने की जा चुकी है।

जब महाराज श्रीदशरथ की मृत्यु हो जाती है, तो उसके

पश्चात् गुरुवशिष्ठ ने दूतों को बुलाया और आदेश दिया कि तुम लोग कैकय नरेश के यहाँ जाओ और केवल भरत और शत्रुघ्न को मेरा आदेश सुना दो कि गुरुदेव ने आप दोनों को तत्काल बुलाया है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं बताना है। कैकय नरेश को भी यह नहीं बताना है कि महाराज दशरथ की मृत्यु हो चुकी है। दो दूत जाते हैं और भरत का हृदय पहले ही आशंकाओं से भरा हुआ है। गोस्वामाजी ने लिखा –

अनरथु अवध अरंभेउ जब तें।
कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें।। २/१५६/५

भरतजी को नाना प्रकार के दु:स्वप्न आते थे। नाना प्रकार के अपशकुन होते थे और श्रीभरत उनकी शान्ति के लिए भगवान शंकर की पूजा करते थे। भगवान शंकर से याचना करते थे।

मागहिं हृदयँ महेस मनाई।
कुसल मातु पितु परिजन भाई।। २/१५६/८

भगवान शिव, आप कृपा कीजिए, हमारे श्रीराघवेन्द्र भैया और श्रीलक्ष्मण, माताएँ, पिताजी सब स्वस्थ रहें, प्रसन्न रहें। इस प्रकार से श्रीभरत के चरित्र का एक पक्ष यह भी है। श्रीभरत के चरित्र में उत्कृष्ट ज्ञान और भक्ति की विलक्षणताएँ तो हैं ही, पर साधारण गृहस्थ के जीवन में जिस प्रकार की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है, जिस प्रकार से अपशकुन होने पर एक गृहस्थ व्याकुल होता है, उसकी शान्ति के लिए प्रयत्नशील होता है, गोस्वामीजी भरत के चरित्र के उस पक्ष को भी प्रस्तुत करते हैं।

इसका अभिप्राय यह है कि श्रीभरत के व्यक्तित्व का एक पक्ष कुछ विचित्र भले ही प्रतीत हो, पर इसके पीछे वे जो क्रियाएँ करते हैं, वे क्रियाएँ तो साधारण व्यक्तियों जैसा ही दिखाई देती हैं, लेकिन उन क्रियाओं के पीछे जो संकल्प उनके मन में उदित हो रहा है, वह विलक्षण है। इसका अभिप्राय है कि वे अपने लिए व्यग्र नहीं है, अपनी सुख-शान्ति की कामना की व्यग्रता उनमें नहीं है। पूजा-पाठ के द्वारा जैसे व्यक्ति भौतिक कामनाओं की पूर्ति के लिए व्यग्र होता है, ऐसी व्यग्रता उनके अन्त:करण में नहीं है। वे तो केवल सच्चे प्रेमी की भाँति जो कुछ करते हैं, उसका उद्देश्य भगवान राम की प्रसन्नता है। मानो वे श्रीराम से भी कुछ नहीं चाहते।

मुझे इस सन्दर्भ में एक बड़े विलक्षण सन्त की याद आती है। वे वृन्दावन में रहते थे। जब मुझे वृन्दावन में रहने का सौभाग्य मिला, तो उन संत की अद्भुत वृत्ति देखकर मैं चकित रह गया। वे वृन्दावन में निवास करते थे, तो मैं यही समझता था कि ये भगवान कृष्ण के भक्त होंगे। पर बाद में जब उनके सत्संग में सम्मिलित होने का अवसर मिला, तब पता चला कि वे भगवान राम के भक्त हैं, पर वे पूजा भगवान कृष्ण की करते थे, उनके वस्त्रों पर भी भगवान कृष्ण का नाम लिखा रहता था। आश्चर्य हुआ भक्त राम के हैं और पूजा भगवान कृष्ण की करते हैं। यद्यपि दोनों एक ही हैं, पर इसके पीछे उनकी वृत्ति बड़ी सुकुमार थी। वे यह कहते थे कि भगवान कृष्ण की पूजा करके मैं यह चाहता हूँ कि भगवान कृष्ण प्रसन्न होकर आशीर्वाद दें कि हमारे राम सुखी रहें। बड़ी अद्भुत भावना थी उनकी ! मैंने देखा, वहाँ पर सत्संग में जो भगवान राम का चित्र रखा रहता था, वहाँ भगवान राम को प्रणाम करने का निषेध था। कोई भी सत्संगी व्यक्ति भगवान राम को प्रणाम नहीं कर सकता था। बल्कि जब सत्संग समाप्त होता था, तो एक एक सत्संगी जाकर भगवान राम के सिर पर हाथ रखता था और आशीर्वाद देता था –

सकल तनय चिर जीवहुँ तुलसिदास के ईस। १/१९६/०

हे राम, आप चिरजीवी रहें, सुखी रहें ! बड़ी अद्भुत, अद्भुत उनकी विलक्षण बातें थीं ! याद आती है उनकी भाव के सुकुमारता की। वे कहते थे, जब स्वस्थ रहें, तब भगवान राम का नाम लेना चाहिए और अस्वस्थ हो जायँ, तब भगवान राम का नाम नहीं लेना चाहिए। बड़ी विचित्र बात है ! क्यों? बोले, अस्वस्थ होकर उनका नाम लोगे, तो प्रभु को चिन्ता हो जायेगी कि इसकी अस्वस्थता कैसे दूर करें। हमारे प्रभु के मन में चिन्ता उत्पन्न करना, यह भक्त का कार्य नहीं है। हम तो यह चाहते हैं कि प्रभु निरन्तर निश्चिन्त रहकर अपने आनन्द में डूबे रहें। न तो प्रभु से कुछ माँगना चाहिए, न ही प्रभु से कुछ कहना चाहिए, प्रभु आनन्दित रहें, यह वृत्ति भक्त की बनी रहे।

वे कभी अयोध्या भी नहीं जाते थे। अयोध्या न जाने के पीछे उनकी बड़ी विचित्र भावना थी। क्या? वे कहा करते थे, अयोध्यावासी जो हैं, वे तो हमारे घोर शत्रु हैं। जिन्होंने श्रीसीता जी की निन्दा की, उनका हम मुँह भी नहीं देखना चाहते। उनका मुँह देखने योग्य भी नहीं है। भक्तों की भावना बड़ी अदभुत होती है, बड़ी सुकुमार होती है ! **(क्रमशः)**

श्रीरामकृष्ण-गीता (११)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

माया

श्रीरामकृष्ण उवाच

मायां विद्धि स्वभावेन जलगुल्मो यथा जले ।
सञ्चालनात् क्षणाद्दूरं पुनः स आगतः स्वतः।।१।।

अनुवाद : श्रीरामकृष्ण बोले – माया का स्वभाव कैसा है, जानते हो? जैसे पानी में जलकुम्भी बहा देने पर वह दूर चली जाती है, पुनः कुछ देर के बाद वह स्वयं ही वापस आ जाती है।।१।।

सा निवृत्तेव सत्सङ्गाद् यद्वा यावद्विचारणम्।
तथा वृणोति सा तु द्राग् विषयवासना पुनः ।।२।।

अनुवाद : उसी प्रकार जब तक विचार अथवा सत्संग करते हैं, तो लगता है कि उसकी निवृत्ति हो गई, वह चली गई, किन्तु कुछ क्षण में फिर से वह विषय-वासना मन को तुरन्त आवृत कर देती है।।२।।

वक्त्रे विषमहीनां न हानिर्भुङ्क्ते यदा स्वयम्।।
दशत्यसौ यदा त्वन्यं विषक्रिया तदा भवेत्।।३।।

अनुवाद : साँप के मुँह में विष होता है। वह जब स्वयं आहार करता है, तब उसे हानि नहीं होती है, अर्थात् विष का असर नहीं होता है, परन्तु जब दूसरों को डँसता है, तब विष का प्रभाव होता है।।३।।

भगवतोऽपि मायास्ति शक्त्या मोहयितुं न तम्।।
मोहयतीतरान् सर्वान् माया भगवतो हि सा।।४।।

अनुवाद : ठीक उसी प्रकार भगवान की माया है, परन्तु उन्हें मोहित नहीं कर सकती। वही माया अन्य सभी को मोहित करती है।।४।।

वेत्सि किं कोच्यते माया रागासक्ति ह्यतीव ये।
मातृ-पितृ-स्वसृ-भ्रातृ-स्त्री-पुत्रस्वजनादिषु।।५।।

अनुवाद : माया किसे कहते हैं, जानते हो क्या? माता, पिता, भाई, बहन, पत्नी, पुत्र, स्वजनों के प्रति जो तीव्र प्रेम और आसक्ति है, वह माया है।।५।।

ततो विद्धि दया नाम सर्वभूतेषु मे हरिः।
इति विज्ञाय सर्वेभ्यः समं प्रेमप्रदर्शनम्।।६।।

अनुवाद : और दया है – सर्वभूतों में मेरा हरि यह जानकर सबके प्रति समान प्रेम प्रदर्शन करना।।६।।

भूताविष्टः पुमान् यः स चेदिति ज्ञातुमर्हति।।
भूतेनाहं समाविष्टो भूतोऽचिरात् पलायते।।७।।

अनुवाद : जो व्यक्ति भूताविष्ट हुआ है, वह यदि यह जान जाये कि वह भूत द्वारा सम्यक् रूप से आविष्ट हुआ है, तो फिर भूत उसी क्षण भाग जाते हैं।।७।।

मायाच्छन्नस्तथा जीवः सम्यग् वेत्ति सकृद् यदि।।
मुग्धोऽहं मायया चेति सा तस्माद् द्राक् पलायते।।८।।

अनुवाद : उसी प्रकार माया से आच्छादित जीव यदि एक बार यह भलीभाँति जान जाये कि 'मैं माया के द्वारा मोहित या आच्छन्न हूँ', तो फिर वह माया उनके पास से उसी क्षण भाग जाती है।।८।।

मायैकावरणं मध्ये जीवात्मपरमात्मनोः।।
अस्मिन्नापसृते नैव साक्षात्कारस्तयोर्भवेत् ।।९।।

अनुवाद : जीवात्मा-परमात्मा के बीच माया एक आवरण है। यह आवरण न हटने से उनकी परस्पर भेंट ही नहीं।।९।। **(क्रमशः)**

गाय का दूध वास्तव में उसके समूचे शरीर में व्याप्त है, पर उसके कान या सींगों को दबाने से तुम्हें दूध नहीं मिलेगा, दूध के लिए तो थनों को ही निचोड़ना होगा। इसी भाँति, ईश्वर तो पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं, पर तुम उन्हें हर जगह नहीं देख पाओगे। पावन तीर्थों और मन्दिरों में, जहाँ युग-युग के साधक-भक्तों के साधन-भजन, पूजा-उपासना आदि के फलस्वरूप भक्तिभाव घनीभूत रूप से ओत-प्रोत है, भगवान का विशेष प्रकाश विद्यमान है।

– श्रीरामकृष्ण देव

अन्तर्मन की बात सुनें

सीताराम गुप्ता, दिल्ली

कोई भी महत्त्वपूर्ण निर्णय लेना है, कोई क्रान्तिकारी कदम उठाना है अथवा कोई नया कार्य प्रारम्भ करना है, तो प्राय: कहा जाता है कि उसे करने से पूर्व पहले अपनी आत्मा की आवाज सुनो और जानो कि ये ठीक रहेगा या नहीं। अपने अन्तर्मन की बात सुनो। कोई भी उलझन हो, तो दिल जो कहता है, वही करो। आत्मा, दिल अथवा अन्तर्मन की बात मानकर कार्य करेंगे, तो परिणाम अच्छा होगा और सफलता मिलेगी। मैं इस बात से पूर्णत: सहमत नहीं रहा इसलिए वर्षों इस पर चिन्तन करता रहा कि अन्तर्मन, आत्मा अथवा दिल की आवाज से क्या तात्पर्य है? यह आवाज कहाँ से आती है अथवा इसका स्रोत क्या है? क्या ये तीनों एक ही हैं अथवा अलग-अलग हैं? जहाँ तक दिल की बात है, वह शरीर का एक भौतिक अंग है, जिसे हृदय कहते हैं। हृदय की भौतिक सत्ता होती है, लेकिन मन या आत्मा की भौतिक सत्ता नहीं होती। यदि होती भी है, तो आज तक तो उसका प्रमाण नहीं दिया जा सका है। जहाँ तक मन अथवा आत्मा को समझने की बात है, बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ भी इसको सही-सही नहीं समझ पाते, केवल उपलब्ध शास्त्रों के आधार पर ही इनकी व्याख्या करते रहते हैं। ऐसी व्याख्याएँ कई बार परस्पर विरोधी भी होती हैं। इससे प्रश्न और उलझकर रह जाते हैं।

कई बार ये भी कहा जाता है कि मन की बात सुनो, मस्तिष्क की नहीं। क्या मस्तिष्क की बात भी सुनी जा सकती है? वास्तव में मस्तिष्क की बात सुनी ही नहीं जा सकती, क्योंकि मस्तिष्क का कार्य आदेश देना नहीं आदेश मानना है। मस्तिष्क सोचने का नहीं निष्पादन का कार्य करता है। जो हम सोचते हैं अथवा करने का निर्णय लेते हैं, मस्तिष्क उसके निष्पादन में सहायक होता है। जैसे ही हम किसी कार्य को करने का फैसला करते हैं अथवा दृढ़ संकल्प लेते हैं, मस्तिष्क की अरबों-खरबों कोशिकाएँ जिन्हें न्यूरॉन्स कहा जाता है, उस कार्य को पूर्ण करने के लिए सक्रिय हो उठती हैं और जब तक कार्य सम्पन्न नहीं हो जाता, लगी रहती हैं। इन्हीं कोशिकाओं अथवा न्यूरॉन्स की सक्रियता के कारण हमारे शरीर में अपेक्षित उपयोगी रसायनों अथवा हार्मोंस का उत्सर्जन प्रारम्भ हो जाता है जिसके कारण हम स्वयं भी कार्य की सफलता के लिए अपना सम्पूर्ण योगदान देने के लिए तैयार हो जाते हैं, अपितु पूर्ण सफलता की प्राप्ति तक चैन से नहीं बैठ सकते। लेकिन इससे अन्तर्मन, आत्मा अथवा दिल की आवाज के स्रोत अथवा महत्त्व का पता नहीं चलता।

पिछले दिनों अचानक रोशनी की एक किरण दिखलाई पड़ी। एक दिन मैं अपने पौत्र के साथ पार्क में घूमने और उसे झूला झुलाने ले गया था। तभी वहाँ एक विदेशी युवती दिखलाई पड़ी, जो अपने सवा-डेढ़ साल के पुत्र को झूला झुला रही थी। मैंने अनुमान लगाया कि वह रूसी है। मेरा सारा ध्यान उन पर केन्द्रित हो गया। जैसे ही उसने अपने पुत्र से कुछ कहा, मेरे मुँह से अनायास ही रूसी भाषा में निकला, ''अरे! आप रूसी हैं?'' उसने भी मेरी ओर देखा और प्रसन्न होते हुए कहा, 'हाँ, क्या आप रूसी भाषा जानते हैं?'' उसके बाद उससे रूसी भाषा में ही बातचीत हुई। मैं साढ़े तीन दशक से भी अधिक समय बाद किसी से रूसी भाषा में बात कर रहा था। मुझे स्वयं पर आश्चर्य भी हुआ कि मैं एकदम रूसी भाषा में बात कर रहा हूँ, लेकिन इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं थी, क्योंकि मैंने चार दशक पूर्व अच्छी प्रकार से रूसी भाषा सीखी थी। लेकिन जब मैं किसी को जापानी, चीनी अथवा अन्य कोई भाषा जो मुझे नहीं आती, बोलते सुनता हूँ, तो ऐसा नहीं होता। न तो मुझे पता चलता है कि अमुक व्यक्ति वास्तव में कौन-सी भाषा बोल रहा है और न मैं उसके साथ उसकी भाषा में

बोल ही पाता हूँ। कारण स्पष्ट है और वह यह है कि मैंने ये भाषाएँ कभी सीखी ही नहीं हैं।

जहाँ तक मेरे रूसी भाषा बोलने का प्रश्न है, लंबे समय तक प्रयोग में न आने के कारण रूसी भाषा मेरे अवचेतन या अचेतन मन की गहराइयों में लुप्त हो गई थी, लेकिन जैसे ही अवसर मिला, वह चेतन मन में प्रकट होने लगी। भाषाएँ ही नहीं, ऐसी बहुत-सी चीजें हैं, कभी न कभी हमारे अनुभव में आई होती हैं, हमारे मन की तहों में दबी पड़ी रहती हैं। लेकिन जापानी, चीनी अथवा अन्य कोई भाषा जो मुझे नहीं आतीं, वास्तव में मेरे मन के अचेतन या अवचेतन मन का हिस्सा बनी ही नहीं, अत: किसी भी रूप में इनके बाहर आने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी प्रकार से कोई भी उपयोगी सुझाव या मार्गदर्शन जिसका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से हमने अनुभव ही नहीं किया अथवा हमारे अचेतन या अवचेतन मन का हिस्सा ही नहीं बना, वह हमारे अन्तर्मन की आवाज बन ही नहीं सकता। यदि ऐसी कोई अन्तर्मन की आवाज वास्तव में होती, तो हम क्यों अच्छी-अच्छी बातें सीखते अथवा अपने दृष्टिकोण को सकारात्मक बनाए रखने के लिए जी-तोड़ मेहनत करते? केवल अन्तर्मन की आवाज के सहारे हम अच्छे से अच्छा कार्य कर लेते। अन्तर्मन की आवाज सुनकर कार्य करने का तात्पर्य यही है कि हम सोच-समझकर अच्छे से अच्छा निर्णय लें।

हमारा मन बिल्कुल एक कम्प्यूटर की तरह कार्य करता है। एक कम्प्यूटर की तरह ही उसमें जो डालते हैं, उसी में से आवश्यकतानुसार बाहर आता है या बाहर लाया जा सकता है। अब प्रश्न उठता है कि अन्तर्मन की बात सुनने का क्या अर्थ हो सकता है? अन्तर्मन की बात सुनने का अर्थ यही है कि मन की भीतरी तहों को खंगालकर उसमें से अपने हित की बात निकालना। लेकिन ये सबके लिए हितकर ही होगी, इस बात का कोई सही-सही उत्तर देना सम्भव ही नहीं, क्योंकि हर व्यक्ति अपने मन की बात को सही ही नहीं; सर्वोत्कृष्ट भी मानता है और उसे ही प्राथमिकता देता है। इसी के कारण द्वंद्व तथा वैमनस्य उत्पन्न होता है। किन्हीं दो या अधिक व्यक्तियों के मन की बात का परस्पर विरोधी होना और उससे द्वंद्व की स्थिति उत्पन्न होना सिद्ध करता है कि हर व्यक्ति के मन की हर बात का कोई महत्त्व नहीं होता। हर व्यक्ति के मन की बात व्यक्ति-सापेक्ष हो सकती है, लेकिन आवश्यक नहीं कि वह समय-सापेक्ष अथवा काल-सापेक्ष भी हो। अन्तर्मन की बात वास्तव में व्यक्ति-विशेष के मन में संचित विचारों अथवा भावों की प्रतिध्वनि मात्र है।

अन्तर्मन की बात में मन शब्द बड़ा महत्त्वपूर्ण है। मन क्या है? वास्तव में मन हमारे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष अनुभवों का संग्रह मात्र है, जिससे हमारी विचार-प्रक्रिया निर्धारित होती है। हमारा समग्र व्यक्तित्व वास्तव में हमारे इन्हीं अनुभवों और सोच का परिणाम है। हम अपने जीवन में जो कुछ भी अच्छा या बुरा सीखते हैं, वह सब हमारे मन में संचित हो जाता है। जो अनुभव कभी काम में नहीं आते, वे मन में बहुत गहरे में जाकर सुप्त हो जाते हैं। उनमें से कुछ अनुभव अधिक गहरे में सुप्त होकर हमारे अचेतन मन का हिस्सा बन जाते हैं, तो कुछ अनुभव कम गहरे में सुप्त होकर हमारे अवचेतन मन का हिस्सा बन जाते हैं। जब यही अनुभव हमारे चेतन मन में आते हैं अथवा चेतन मन में सप्रयास लाए जाते हैं, तो हमारे चेतन मन का हिस्सा बन जाते हैं और अन्तर्मन की बात कहलाते हैं। अन्तर्मन की बात वास्तव में हमारी उत्कट इच्छा मात्र है, जिसका हमने अपनी बुद्धि अथवा विवेक के अनुसार चुनाव किया है और जिसे हम हर हाल में पूर्ण होते हुए देखना चाहते हैं। अत: अन्तर्मन की बात को अत्यधिक महत्त्व देना भी मात्र भावुकतापूर्ण विचार ही है।

अब ये तो आवश्यक नहीं कि हमारे सभी अनुभव अच्छे या बुरे अथवा उपयोगी या अनुपयोगी ही हों। कुछ अनुभव अच्छे हो सकते हैं, तो कुछ बुरे भी, लेकिन ये सभी अनुभव हमारे मन की संपत्ति बन जाते हैं। ये संचित अनुभव ही हमारे दिल की आवाज या अन्तर्मन की बात होते हैं। जब हम दिल की आवाज या अन्तर्मन की बात सुनने की बात करते हैं, तो संभव है कि हम अपने निहित स्वार्थों के चलते गलत अनुभवों का चुनाव कर बैठें, जिसके परिणामस्वरूप गलत कार्य करने को विवश हो जाएँ। हम कैसे निर्णय करें कि हमारे मन की बात सही है या नहीं? तो ऐसे में सही या गलत को जाने बिना दिल की आवाज या अन्तर्मन की बात सुनने का क्या लाभ? जिस व्यक्ति के मन में केवल अनुपयोगी अथवा नकारात्मक विचार भरे हों, वह कैसे किसी उपयोगी अथवा सकारात्मक विचार का चुनाव कर सकता है? जो व्यक्ति पक्षपातपूर्ण हो अथवा राग-द्वेष से भरा हो, तो कैसे उसके दिल की आवाज या अन्तर्मन की बात को महत्त्व दिया जा सकता है?

एक व्यक्ति जिसके मन में लालच भरा है, वह कितनी

ही दिल की आवाज या अन्तर्मन की बात सुने, वह लालच छोड़ नहीं सकता? यदि एक लालची व्यक्ति लालच छोड़ देता है, तो यह उसके दिल की आवाज या अन्तर्मन की बात कैसे हुई? एक चोर, लुटेरा, हत्यारा अथवा बलात्कारी भी अपने दिल की आवाज या अन्तर्मन की बात सुनने के कारण ही चोरी, लूट, हत्या अथवा बलात्कार जैसे बीभत्स कार्य से विरत नहीं होता, अपितु दिल की आवाज या अन्तर्मन की बात सुनकर ही वह चोरी, लूट, हत्या अथवा बलात्कार जैसे गलत काम करता है। दिल की आवाज या अन्तर्मन की बात पर ही कोई व्यक्ति लोक-कल्याण के कार्य करने के लिए आगे आकर अपना सारा जीवन लोगों के जीवन को स्वर्ग बनाने में लगा देता है, तो इसी दिल की आवाज या अन्तर्मन की बात पर ही कोई-कोई शासक छद्म विकास अथवा लोक-कल्याण के नाम पर तानाशाह बन बैठता है और लोगों का जीवन नरक बना डालता है। मात्र कुछ लोगों के अन्तर्मन की आवाज के कारण संसार के लोगों को भयंकर युद्धों को झेलना पड़ा है।

पुरुषार्थ हो या अकर्मण्यता दोनों का ही चुनाव विचारों के वशीभूत होकर किया जाता है। जब तक किसी कार्य को करने का विचार न बने, तब तक वह कार्य किया ही नहीं जा सकता और विचार मन की ही देन या उपज है। यही दिल की आवाज या अन्तर्मन की बात सुनने की प्रक्रिया है। मन बहुत गड़बड़ करवा देता है, अत: दिल की आवाज या अन्तर्मन की बात सुनना सदैव हितकर ही हो, यह संभव नहीं। यदि मन में संचित अच्छा अनुभव विचार रूप से कार्य रूप में परिणत हो जाए, तो अच्छा परिणाम होगा, अन्यथा बुरा व घातक परिणाम होने में संदेह नहीं। दिल की आवाज या अन्तर्मन की बात सुनने से उत्पन्न घातक परिणामों से बचने के लिए मन की साधना या मन को साधना बहुत आवश्यक है। कबीर की एक साखी है :

मन के मते न चालिए मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है सो कोई साधु एक।।

हर स्थिति में केवल अपने मन के अनुसार चलना ठीक नहीं, क्योंकि मन विविध मतों वाला होता है। उसमें न तो कोई स्थायित्व ही होता है और न एकरूपता ही होती है। हर व्यक्ति का मन अलग-अलग दिशाओं में जाता है। मन अलग-अलग तरह से सोचता है और अलग-अलग प्रकार से प्रतिक्रिया करता है। किसी एक व्यक्ति का मन भी सदा समान नहीं रहता। वह पल-पल बदलता रहता है। व्यक्ति का हर अनुभव उसे बदल देता है। मन के विषय में कहा गया है कि वह संकल्प-विकल्पात्मक है। कभी इसका चुनाव करता है, तो कभी उसका चुनाव करता है। उसमें परस्पर विरोधी भाव भरे रहते हैं। ऐसे में दिल की बात मान लेना या अन्तर्मन की आवाज सुन लेना कई बार बहुत ही घातक हो सकता है। जो मन की संकल्प-विकल्पात्मकता से मुक्त होकर, मन के पार होकर अथवा मन को नियंत्रित कर सही कार्य का चुनाव कर उसे सम्पन्न कर सके, ऐसा व्यक्ति दुर्लभ होता है। जो ऐसा कर सके, उसी की सोच उत्तम है और वही साधु है। ऐसे साधु के मन की बात ही उपयोगी व उत्तम हो सकती है।

हमारे मन रूपी कम्प्यूटर में जहाँ अधिकांश कूड़ा-कचरा भरा होता है, हम उसमें से उपयोगी सामग्री या विचार कैसे निकालें यह बड़ा जटिल और महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। यहाँ हमें विवेकशील होने की आवश्यकता है। विवेक के द्वारा ही काल और स्थान के अनुसार उपयोगी व अनुपयोगी विचारों अथवा कार्यों में अन्तर्भेद किया जा सकता है। विवेकी व्यक्ति ही सकारात्मक चिन्तन द्वारा सही विचारों का चयन कर उन्हें कार्य रूप में परिणत कर सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि हम सदैव अपना दृष्टिकोण सकारात्मक बनाए रखने पर जोर दें। यदि हमारी सोच पूर्णत: सकारात्मक हो जाए, तो सारी समस्याएँ ही समाप्त हो जाएँ। लेकिन प्राय: ऐसा सम्भव नहीं होता। इसीलिए विवेक अनिवार्य है। जिस प्रकार से हमारे अन्य सभी अनुभव हमारे मन में संचित हो जाते हैं अथवा हम प्रयास करके उन्हें अपने मन में रख लेते हैं, उसी प्रकार से विवेकशीलता को भी मन के प्रशय देना चाहिए। ध्यानावस्था में अथवा मन को शान्त-स्थिर अवस्था में ले जाकर निम्नलिखित स्वीकारोक्तियाँ करने से ही हम सही अर्थों में मन की बात सुनने की कला का विकास कर पाएँगे :

* मैं अपने जीवन में केवल सकारात्मक और सर्वोपयोगी विचारों का ही चयन करता हूँ और उन्हें कार्य रूप में परिणत करता हूँ।

* मुझमें सकारात्मक और सर्वोपयोगी विचारों के चयन अथवा विवेक से कार्य करने की पूर्ण क्षमता है।

* मैं अपनी विवेकशीलता के प्रति पूर्णत: आश्वस्त हूँ और अपने मन की सही बात सुनकर पूर्ण विश्वास के साथ उसे कार्य रूप में परिणत करता हूँ। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (७७)

स्वामी भूतेशानन्द

– राहत–कार्य करके आश्रम और कहाँ-कहाँ हुआ है?

महाराज – सारगाछी में हुआ है, चंडीपुर में हुआ है। भाई-भाई में झगड़ा से चंडीपुर आश्रम हुआ।

– वह कैसे?

महाराज – भाइयों में एक साधु हुए थे। उनके भाई सब उनसे रुष्ट थे। क्योंकि उनकी इच्छा थी कि उनकी सम्पत्ति का भाग बेलूड़ मठ के नाम में लिख दिया जाये। अन्य भाइयों ने उनका विरोध किया। क्योंकि इससे उनलोगों की पैतृक सम्पत्ति का बँटवारा हो जायेगा। इसके बाद आश्रम हुआ, तो उनलोगों ने मुकदमा कर दिया। वे लोग कहते – ''हमलोग शरत् महाराज को कोर्ट में खड़ा करेंगे, उसके बाद रुकेंगे।'' वैसा वे कर नहीं सके।

– काँथी में आपने राहत-कार्य किया था?

महाराज – अकाल-राहत-कार्य किया था। उस समय जो मन्त्री थे, वे भक्त थे। वहाँ के लोगों ने उनका भी और हमलोगों का भी घेराव किया था। दल के दल लोग आ रहे हैं। एक दल कह रहा है – प्रति व्यक्ति को दो किलो, दूसरा दल कह रहा है – देना होगा, देना होगा। उसके बाद हमारे दल के लोगों ने मंत्री को कहा – सर, आप कुछ कह दीजिए, तो ये लोग चले जायेंगे। उन्होंने कहा – ''मैं नहीं कहूँगा। उनके नेता के साथ तो बात हो गयी है। अब क्या कहूँ।'' वे सब फिर से बोल रहे हैं – ''देना होगा, देना होगा।''

– मन्त्री कौन थे ?

महाराज – नाम भूल रहा हूँ। पूर्व बंगाल में हमलोगों का दंगा राहत-कार्य हुआ था। वहाँ भी सेवाकर्मियों को घेरकर रखा था। उसके बाद सूचना मिलने पर पुलिस की सहायता से उन सबको वहाँ से मुक्त कराया गया। कितने प्रकार का राहत-कार्य हुआ है, उसे कहकर समाप्त नहीं किया जा सकता।

– एक-दो के बारे में बताइये न महाराज।

महाराज – जैसे लाहौर में प्लेग राहत-कार्य। शरत् महाराज तब थे। उन्होंने कहा – देखो बापू ! प्लेग-राहत-कार्य विपत्तिकर होता है। मैं तुमलोगों को वहाँ जाने को भी नहीं कहूँगा और मत जाओ, यह भी नहीं कहूँगा। अच्छा कार्य है। तुम जाना चाहो, तो जाओ।'' उसमें हमारे कुछ लोग गये थे।

– उस समय भोजन की पंक्ति में पूछा जाता था – कौन-कौन राहत कार्य में जाना चाहते हैं?

महाराज – कौन जायेगा, सामान्यत: ऐसा नहीं पूछा जाता था। उनलोगों को भेजा जाता था। कालरा राहत-कार्य के समय पूछा गया था, कौन स्वेच्छा से जाना चाहता है? कालरा कई स्थान पर हुआ था। मैं जब ढाका में था, तब पूर्व बंगाल में किसी स्थान पर हुआ था। कहाँ हुआ था, अब भूल गया हूँ। गोपेश महाराज (स्वामी सारदेशानन्द जी) भी गये थे। ढाका विश्वविद्यालय के Provast (विभागाध्यक्ष) थे रमेश मजुमदार। उन्होंने कहा था – कुछ लड़कों को दे सकता हूँ। बड़ी भयंकर स्थिति थी ! उन सबके अभिभावक हमें क्या कहेंगे, नहीं जानता। जो भी हो, कुछ लड़कों को उन्होंने भेजा भी था। हमलोगों ने पहले उन्हें कालरा का टीका लगवाकर आने को कहा। किन्तु बाहर के बच्चे हमलोगों के साथ मिलकर काम नहीं कर सकते। इतना कष्ट सहने का उनको अभ्यास नहीं है। वहाँ न खाने की व्यवस्था रहती है, न रहने की व्यवस्था रहती है। ऐसे सब स्थानों पर राहत-कार्य होता था।

– प्लेग या कालरा राहत-कार्य करने से हमारे कोई साधु आक्रान्त हुए हैं, ऐसी कोई घटना घटी है क्या?

महाराज – नहीं, वैसी घटना नहीं घटी। साधुओं को इतनी सहजता से नहीं पकड़ सकता !

– बांगलादेश में और कौन-सा राहत कार्य आपने किया था?

महाराज – नहीं, मेरे रहते नहीं हुआ था। ढाका में तो मैं कुछ दिन ही था। कालरा राहत-कार्य हुआ था। वहाँ मैं नहीं गया था। मैंने व्यवस्था की थी।

– नोआखाली राहत-कार्य क्या गोपेश महाराज ने किया था?

महाराज – हाँ, इसके अतिरिक्त वे ढाका के कालरा-राहत-कार्य में भी थे। राहत-कार्य में सबसे अधिक दुखदायक था डीमापुर (बर्मा का) राहत-कार्य। उसके बाद बांगलादेश में शरणार्थी राहत-कार्य। हासनाबाद, टाकी, बसिरहाट, इन सब क्षेत्रों में राहत-कार्य किया था। वहाँ देखा था, सबके सिर पर एक-एक गठरी और बगल में चटाई है। यही लेकर दल-के-दल लोग आ रहे हैं। देखकर चिन्ता हुई, इतने लोग जायेंगे कहाँ ! जो जहाँ पाया, घुस गया। लोगों के घरों में, बरामदा में सो गये। एक आम का बगीचा था। वहाँ बहुत से लोग घुस गये। हमलोगों ने कई राहत-केन्द्र बनाया था। हमारे साथ थे विमान महाराज। शरणार्थियों के साथ बैठकर वह भी रोते थे, शरणार्थी भी रोते थे। इतना रोने से राहत-कार्य कैसे होगा?

– कहाँ शिविर हुआ था?

महाराज – बसिरहाट में। वहाँ के एक आम-बागान में। ऐसे ही कई स्थानों पर हुआ था।

– क्या सामान दिया गया था।

महाराज – विभिन्न प्रकार के सामान। भोजन, वस्त्र यही सब।

– थाली-बर्तन?

महाराज – हाँ, थाली-बर्तन भी दिया गया था।

वहाँ से दण्डकारण्य आदि स्थानों पर भेजने की व्यवस्था क्या हमारे मिशन द्वारा किया गया था?

महाराज – नहीं, नहीं, हमलोगों ने नहीं किया, सरकार ने किया था। हमलोग मात्र कुछ स्थानों पर शिविर लगाये थे। इन्दिरा गाँधी इस शिविर को देखने आयी थीं। मैंने सोचा, उनके साथ रहने की आवश्यकता है। किन्तु काँग्रेसियों ने उन्हें ऐसा घेरकर रखा था कि उनके पास जाने का कोई मार्ग नहीं था। कुछ देर रुककर चला आया।

– कई दिनों तक राहत-कार्य चला था?

महाराज – हाँ।

– लाख-लाख लोग आये थे ?

महाराज – देखकर डर लगता था। इतने लोग जायेंगे कहाँ? जहाँ जितना खाली स्थान था, वहाँ वे सब घुस गये। केवल खाली स्थान ही नहीं, जहाँ, जितना सम्भव था, उतना घुस गये।

– हमलोगों ने भी देखा है। हमलोगों के स्कूल में, जो बड़ा फुटबाल का मैदान था, वह भर गया था। कई मचान बनाया गया था। त्रिपाल टांगा गया था। अन्यान्य संस्थाएँ और सरकार के लोग भी आये थे। चार-पाँच मास तक राहत-कार्य चला था। कीचड़, पानी, बरसात के समय भी वे सब वहीं थे।

अच्छा, गऊघाट में क्या राहत-कार्य हुआ था?

महाराज – हाँ।

– १९७१ ई. में बांग्लादेश में जब स्वाधीनता युद्ध चल रहा था, तब राहत-कार्य हुआ था?

महाराज – वह दृश्य देखकर डर लगता था। पतले-पतले सब लोग, सिर पर गठरी, बगल में चटाई, यही लेकर आ रहे हैं। सहारा-सम्बल नहीं है। जंगल से भागते-भागते आ रहे हैं।

– क्यों अच्छे रास्ते से नहीं आने दिया?

महाराज – मार्ग ही नहीं था, फिर अच्छा मार्ग कहाँ ! एक ही मार्ग हासनाबाद से था।

– क्या उस समय आप शिविर में थे?

महाराज – नहीं, आसपास रहता था। शरणार्थी जहाँ-कहीं गंदा करते थे। जहाँ चाहते, वहीं सो जाते। इसके अतिरिक्त गायघाट में तूफान-राहत-कार्य हुआ है। बांगलादेश के युद्ध के समय करीमगंज में राहत-कार्य हुआ था। सत्येन महाराज (स्वामी सत्त्वानन्द) प्रभारी थे। ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र से ब्रह्मचारी गये थे। ये जो लोग आ रहे थे, वे बहुत दुर्बल थे। लड़ाई करने जैसी शक्ति नहीं थी, मनोबल भी नहीं था।

– लड़ाई करने की शक्ति रहने से वे सब भागकर नहीं आते। इतने लोग !

महाराज – हाँ, यह निश्चय ही ठीक बात है।

– यदि सभी मिलकर डँटकर खड़े होते, तो किसी को भी नहीं आना पड़ता। जो आये हैं, उनका खाना-पीना, चलना-फिरना देखकर ८० प्रतिशत मुस्लिम-प्रभावित लगते थे।

महाराज – चारों ओर इतना राहत-कार्य हो रहा है और कितना राहत कार्य किया जाय? केवल राहत-कार्य, राहत-कार्य ! इस स्थिति में वे सब आते हैं कि उनलोगों के लिए राहत-कार्य किया नहीं जा सकता। केवल नाम का ही राहत-कार्य होता है। यही चावल-दाल देना, इतना ही।

शेष भाग पृष्ठ २२९ पर

अहिंसा के चरणों में बन्दूक

अजय कुमार पाण्डेय

संयुक्त-सचिव, सचिवालय, लखनऊ, उत्तरप्रदेश

कोसलपति राजा प्रसेनजित के साम्राज्य के जालिनी नामक जंगल में अंगुलीमाल का आतंक था। उनकी सेना, उनके सारे शस्त्र-बल, दंड-विधान असफल हो चुके थे। इन लोगों को कहीं से, किसी भी प्रकार से अंगुलीमाल से रक्षा नहीं हो रही थी। जहाँ आम लोग जाने से डरते थे और जो गए, वे मारे गए। उनकी अंगुलियाँ काटकर अंगुलीमाल माला पहन लिया करता था। अन्ततः महात्मा बुद्ध बिना शस्त्र के, बिना दंड-विधान के उस जंगल में प्रवेश करते हैं। जब वे उस खूंखार अंगुलीमाल के पास जाते हैं, तो महात्मा बुद्ध की वह कौन-सी जीवंत शक्ति है, वह कौन-सी ऊर्जा है, जो अंगुलीमाल को प्रभावित करती है। मैं कहता रहता हूँ कि जीवंत व्यक्ति की जीवन्तता बड़ी संक्रामक होती है। पास आनेवाला हर व्यक्ति इस संक्रामक जीवन्तता के गुण से संक्रमित होता ही होता है। निश्चित रूप से उस आत्मा का, उस शक्ति-प्रवाह का, उस शक्तिमंडल का प्रभाव अंगुलीमाल पर पड़ा और उसने भी बुद्ध के चरणों में अपने आप को समर्पित कर दिया। यह किसी सैन्य-शक्ति, राजशक्ति का प्रभाव नहीं था, यह अहिंसा-शक्ति के आलोक का प्रभाव था, जो बुद्ध के व्यक्तित्व से विकिरित हो रहा था।

गुरुनानक के समय में भी सज्जन ठग का नाम आता है। सज्जन ठग लोगों को ठगा करता था। उसने मन्दिर और मस्जिद दोनों बनाकर रखा था। हिन्दू यात्री आते थे, तो मन्दिर में रूकवाने की व्यवस्था करता था और मुसलमान आते थे, तो मस्जिद में रूकवाने की व्यवस्था करता था। छल-बल से उनको लूटता था, मारता था, उनके मृतक शरीर को कुओं में डाल देता था। लेकिन जब गुरुनानक जी आते हैं, तो क्या प्रभाव पड़ता है सज्जन ठग पर ! वह ठग शब्द उसके नाम से अलग हो जाता है और सचमुच वह सज्जन बन जाता है। यह किसका प्रभाव था ! निर्वैर, अहिंसक जीवन यापन करनेवाले सन्त गुरु-नानक के चरित्र का प्रभाव था ! अहिंसा ने हिंसा पर सदा विजय प्राप्त की है। आज भी वह परम्परा चली आ रही है।

१९६० में भूदान-यात्रा के दौरान विनोबाजी के पास तहसीलदार सिंह का एक संदेश पहुँचता है। तहसीलदार सिंह डाकू मानसिंह के पुत्र थे। उनको फाँसी की सजा हो गयी थी। वे नैनी जेल में थे। उनकी इच्छा थी कि फाँसी होने के पूर्व मैं किसी संत का दर्शन करूँ। संत का दर्शन क्यों? क्योंकि कहा जाता है कि चन्द्रमा की ज्योति से बड़ी सूर्य की ज्योति होती है। सूर्य की ज्योति से बड़ी ज्ञानदीप की ज्योति होती है। ज्ञान की ज्योति से भी बड़ी आत्म-ज्योति होती है। जिसने इस आत्मज्योति को पहचान लिया, वही महात्मा बुद्ध बनते हैं, वही गाँधी बनते हैं, वही विनोबा बनते हैं, वही सुब्बाराव बनते हैं। इसलिए तहसीलदार सिंह ने विनोबाजी को चुना कि मेरी फाँसी तो होने ही वाली है, लेकिन यदि विनोबाजी दर्शन दे दें, तो मैं धन्य हो जाऊँगा। यह लम्बी कहानी है। बाद में उनकी फाँसी की सजा माफ कर दी जाती है और आजीवन कारावास की सजा होती है।

कश्मीर से लौटते समय बाबा विनोबा १९६० में चंबल घाटी में आते हैं। चम्बल के डाकुओं से प्रभावित राज्य थे – उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश और राजस्थान। वहाँ चंबल के डाकुओं का आतंक था। वहाँ डाकू अपने आप स्वतः शाम की प्रार्थना में अपने आप को समर्पित करने बाबा के पास आते हैं। उसमें पहला डाकू रामअवतार सिंह होता है। इस तरह मानसिंह ग्रुप के २० डाकू १९६० में बाबा के सामने शान्तिपूर्वक समर्पण करते हैं।

बाबा आगे बढ़ जाते हैं, लेकिन शान्ति का काम बहुत संतोषजनक आगे नहीं बढ़ता है। वह समस्या आगे तक बनी रहती है। अब १९७१ का समय आया। १९७१ में दो गिरोह माधव सिंह और मोहर सिंह का था। माधव सिंह थोड़े बुद्धिमान थे। माधव सिंह विनोबाजी के पास जाकर समर्पण की बात करते हैं। बिनोबा जी कहते हैं कि १९६० में तो मैंने समर्पण करा दिया था, परन्तु अब मैंने क्षेत्र-संन्यास ले लिया है और अब मेरे लिए वहाँ जाना सम्भव नहीं है। अब मैं इस आश्रम से बाहर नहीं निकलूँगा। आपको अगर समर्पण करना ही है, तो आप जे.पी. (जयप्रकाश नारायण) से सम्पर्क कीजिए। माधव सिंह जयप्रकाश नारायण जी से

भेंट करने के लिए दिल्ली आते हैं। दिल्ली में पता चलता है कि वे पटना में हैं। अन्त में वे अपना नाम बदलकर रामसिंह ठेकेदार के नाम से जाते हैं। अन्ततः उजागर होता है कि यही माधवसिंह हैं, जिनके ऊपर उस समय १९७०-७१ में १.५ लाख रुपये का इनाम रखा गया है। माधव सिंह जयप्रकाशजी से अनुनय-विनय करते हैं कि हमलोग समर्पण करना चाहते हैं। अब प्रश्न उठता है कि वह व्यक्ति क्यों नहीं दूसरे के पास चला गया? क्योंकि जयप्रकाशजी, विनोबाजी ये महान विभूतियाँ थे। ये साक्षात् गाँधी की प्रतिमूर्ति थे। इसलिए मोहर सिंह को लगा कि अगर समर्पण करना है, तो इनसे उपयुक्त व्यक्ति नहीं हो सकता है। बिनोबाजी समझते हैं कि जयप्रकाशजी से उपयुक्त व्यक्ति कोई नहीं हो सकता है और जयप्रकाशजी ने पूरा दायित्व ३१वर्षीय सुब्बारावजी के कन्धों पर डाल दिया।

बात सन् १९५२ की है। श्री वृन्दावन सिंह तोमर मध्य भारत के सेवादल के प्रभारी थे। वे मुरैना के रहनेवाले थे। सुब्बाराव जी उस समय दिल्ली में रहते थे। तोमरजी के साथ भाईजी (सुब्बारावजी) उनके गाँव गये।

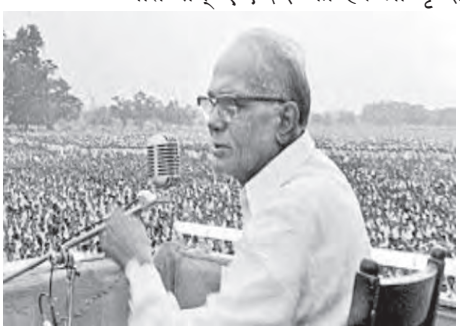
जयप्रकाश नारायण

गाँव का नाम चन्दोखर था। दिल्ली से चन्दोखर की यात्रा में रेल, बस, ऊँट और टट्टू का सहारा लेना पड़ा। लेकिन टट्टू भी गाँव तक नहीं पहुँच पाया। अन्ततः पैदल चलकर गाँव तक की यात्रा पूरी हुई। भाईजी को अपने घर में बैठाकर वे गाँव में चले गये। लौटे तो उन्होंने बताया कि मानसिंह डाकू का गिरोह गाँव में आया है। उसी दिन शाम को एक विशाल वृक्ष के नीचे बैठक हुई। बैठक में पुलिस की वर्दी में डाकू गिरोह के सदस्य थे। बैठक में भाईजी ने गीत गाया – 'करना है निर्माण हमें नव भारत का निर्माण।'' उस समय भाईजी को हिन्दी बोलने में कठिनाई होती थी, फिर भी हृदय से निकली हुई बात से डाकू गिरोह के सदस्य बहुत प्रभावित हुए। बैठक के बाद वे भाईजी से मिलने भी आये। भाईजी को वे लोग कुछ उपहार देना चाहते थे, लेकिन उनके पास कुछ भी नहीं था। इसलिए उन लोगों ने प्रेम से निर्णय लिया कि हम दो पक्षों में विवाद है। पंचायत करके उस विवाद को सुलझायेंगे। यह प्रेम से सुलझाया गया विवाद ही आपके लिए हमलोगों की ओर से उपहार है।

इस मर्मस्पर्शी घटना ने भाईजी को भी आन्दोलित किया और चम्बल क्षेत्र में युवा शिविरों का दौर चल पड़ा। सकारात्मक वातावरण बनने लगा। लोगों से सम्पर्क बढ़ने लगा और अन्ततः महात्मा गाँधी शताब्दी रेलयात्रा, जिसके निदेशक भाई जी बनाये गये थे, से प्राप्त मानधन का उपयोग हिंसा से ग्रस्त चम्बल क्षेत्र में ही करने का निर्णय लिया गया। १९७० में मुरैना जिला के जौरा नामक स्थान पर 'महात्मा गाँधी सेवा आश्रम' की स्थापना भाईजी द्वारा की गयी। डाकू समर्पण का प्रयास बहुत दिनों से चल रहा था, किन्तु फलीभूत १४ अप्रैल, १९७२ को हुआ। महात्मा गाँधी सेवा आश्रम जौरा में समर्पण की कार्यवाही सम्पन्न हुई। इस प्रकार १९६०, १९७२ एवं १९७६ में बटेश्वर (उ.प्र.) में कुल मिलाकर ६५४ डाकूओं का आत्मसमर्पण हुआ। गाँधीजी के जाने के बाद विश्व इतिहास में यह एक अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत हुआ। इसका संदेश स्पष्ट था। प्रेम और करुणा के बल पर क्रूर से क्रूर व्यक्ति का भी हृदय परिवर्तन करवाया जा सकता है। यह केवल पुस्तकीय ज्ञान मात्र नहीं है। इसे यथार्थ के धरातल पर सुब्बारावजी ने चरितार्थ करके दिखाया।

मुझे नोबेल पुरस्कार प्राप्त अर्नोल्ड टॉयनबी की बात याद आ रही है। जब वे भ्रमण करते हुए १९५०-५१ के करीब भारत में आए थे, तो एक पुस्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा था – १९वीं शताब्दी यूरोप का था, लेकिन संसार में शान्ति, प्रसन्नता चाहिए, तो २०वीं शताब्दी भारत की होनी चाहिए। उन्होंने भारत के तीन लोगों का – महात्मा बुद्ध, श्रीरामकृष्ण परमहंस और महात्मा गाँधी का नाम लिया था, क्योंकि ये आध्यात्मिक शक्ति की प्रतिमूर्ति थे। भारत में या विश्व में जब भी कहीं भी, कोई भी परिवर्तन हुआ है, तो वह परिवर्तन करनेवाले संत होते हैं, संन्यासी होते हैं, पीर होते है, फकीर होते हैं, त्यागी होते हैं, तपस्वी होते हैं, अरण्यवासी होते हैं।

उसी क्रम में १९७२ में परिवर्तन का यह दौर चलता है। इसका परिणाम यह होता है कि मोहर सिंह के नेतृत्व में १४-१६ अप्रैल १९७२ में ५११ डाकू अपने आप को समर्पित कर देते हैं। यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। सुब्बारावजी

को भी यह विश्वास हो गया कि यह कार्य हमलोगों के वश की बात नहीं थी, यह निश्चित रूप से ईश्वरीय कृत्य है। जब राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश और केन्द्र सरकार भी असफल हो चुकी थी, उस स्थिति में सुब्बारावजी जैसा एक निहत्था आदमी बिना शस्त्र के वहाँ जाकर सभी डाकुओं का हृदय परिवर्तन करते हैं, तो यह अपने आप में एक विलक्षण घटना है। विश्वपटल पर विश्व इतिहास में यह एक अद्‌भुत दृष्टान्त था कि कैसे स्नेह के बल पर, दुलार के बल पर, प्यार के बल पर किसी का हृदय परिवर्तन किया जा सकता है और असम्भव को भी सम्भव बनाया जा सकता है। एक चीज आपने भी सुना होगा, अगर ताले पर हथौड़े से मारें, तो हाथ तो चोटिल होता ही है, मारनेवाले को भी चोट लगती है, लेकिन छोटी-सी चाबी जब प्यार से ताले के हृदय को स्पर्श करती है, तो ताला स्वत: खुल जाता है। कुछ ऐसा ही उन डाकुओं के साथ भी हुआ। चम्बल के डाकुओं ने सुब्बारावजी की प्यार भरी बातों को सुना और हृदय से अनुभव किया और समर्पण करने के लिए तैयार हो गए और समर्पण किया भी। १४ अप्रैल को मध्य प्रदेश के मुरैना जिले के जौरा में यह समर्पण हुआ।

१४ अप्रैल के पहले एक घटना घटी। आध्यात्मिक शक्ति कैसी होती है ! उनके सामने भौतिक बल किस तरह से झुकता है तथा समर्पित करता है ! एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। जौरा में समर्पण करने से पूर्व लगभग १५० बागियों को वहाँ से १० किलोमीटर दूर पगारा गाँव में रखा गया था। पगारा में उन डाकुओं की खासकर मोहर सिंह की इच्छा हुई कि वे जयप्रकाश जी से मिलें। जयप्रकाश नारायण जी से सुब्बाराव जी ने मिलवाने की व्यवस्था की। मिलने के पहले वह बहुत सी बातें कह रह था, बाबूजी मिलने पर मैं ये-ये शर्त उनके सामने रखूँगा, यदि ये शर्त नहीं मानी गयी, तो मैं समर्पण नहीं करूँगा। लेकिन जब जयप्रकाशजी के कमरे में मोहर सिंह को लाया गया, तो मोहर सिंह काँपने लगे। मोहर सिंह ने कहा, मैं उनसे नहीं बात कर पाऊँगा। किसी तरह वे जयप्रकाशजी के पास गए और जयप्रकाशजी को राम-राम और चरण स्पर्श करने के अलावा उनके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। उनकी आँखों से आँसू निकलने लगे। उसी समय पुलिस के बड़े अधिकारी अपने बच्चे और पत्नी के साथ ग्वालियर से आए हुए थे। वहाँ प्यार, स्नेह, सद्‌भाव का कैसा वातावरण था ! जो पुलिस उन डाकुओं के पीछे पड़ी रहती थी, वही पुलिस ऑफिसर उनसे मिलकर कृतार्थ हुए और उनकी पत्नी ने उन डाकुओं को राखी बाँधी, प्यार की राखी बाँधी। ऐसा वातारवरण था वहाँ का ! इसी वातावरण ने १४ अप्रैल, १९७२ में ५११ डाकुओं को आत्मसमर्पण करने के लिए प्रेरित किया।

इससे भी बड़ी बात है, सर्वोदय जगत में, गाँधीवाद में क्या शक्ति है, क्या क्षमता है, क्या सामर्थ्य है, इसका एक दृष्टान्त देने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। जब १९७२ का समर्पण हो गया और डाकुओं को ग्वालियर जेल में रख दिया गया, तो उसी समय उस क्षेत्र के एक भगवान सिंह चंदेल से सुब्बाराव जी, जिन्हें हमलोग 'भाईजी' कहते हैं, से आश्रम में मिलने आए। उन्होंने सुब्बारावजी से कहा कि छोटे सिंह भी एक गैंग के मुखिया हैं। भाईजी ने कहा कि छोटे सिंह ने तो समर्पण कर दिया है। बल्कि सुब्बाराव जी को याद था कि छोटे सिंह ही जाते-जाते उनको १०० रूपये दे गये थे। उस जमाने में १०० रु. बड़ी रकम होती थी। तब भगवान सिंह ने कहा कि मैं छोटे सिंह से मिलना चाहता हूँ। भाईजी ने पूछा, क्यों मिलना चाहते हो? भगवान सिंह चंदेल ने कहा, उन्होंने मेरे पुत्र की हत्या कर दी थी। भाईजी को डर हुआ, उन्होंने सोचा, जिसके पुत्र की हत्या कर दी गई हो, तो वह व्यक्ति जब समर्पित डाकू से मिलेगा, तो उसकी प्रतिक्रिया क्या होगी ! लेकिन उन्होंने जेल-अधीक्षक को एक पत्र दिया, जिसमें लिखा था कि ये भगवान सिंह चंदेल हैं। इनसे छोटे सिंह डाकू को मिलवा दीजिए। छोटे सिंह से जब मिलवाने के लिये जेल अधीक्षक ने अनुमति दे दी और जब दोनों मिले, तो क्या कारुणिक दृश्य था ! क्या प्रेरणादायी दृश्य था ! क्या हृदयस्पर्शी दृश्य था ! छोटे सिंह ने कहा कि दद्‌दा (बड़े भैया) ! मैंने आपके पुत्र की हत्या की है, मैं जेल में हूँ, चाहे तो आप मुझे कोई भी दंड दिलवा सकते हैं, मैं तैयार हूँ, आप अपने पुत्र की हत्या के अपराध में मुझे फाँसी की सजा दिलवा सकते हैं। भगवान सिंह चंदेल ने कहा, मेरा एक पुत्र तो चला गया, वह अब वापस नहीं आयेगा। लेकिन आज के बाद से तुम मेरे पुत्र हो, मैंने अपना एक पुत्र खोया है, लेकिन अब अपने दूसरे पुत्र को खोना नहीं चाहता। दोनों के आँखों में आँसू थे, दोनों लिपटकर रोए। यह है गाँधी विचार का प्रभाव ! इसलिए गाँधी के चरणों में चंबल की बंदूकें स्वयं ही समर्पित करने

को विवश हो गईं। यह क्रम आगे भी चलता रहा। जिसमें आध्यात्मिक शक्ति नहीं होगी, जिसमें भावनात्मक शक्ति नहीं होगी, वह इस तरह का काम नहीं कर सकता है।

स्वतन्त्रता के तत्काल बाद मूरत सिंह ने १९४८ में कुछ लोगों के कहने पर समर्पण किया, लेकिन जिन शर्तों पर समर्पण किया, वे शर्तें पूरी नहीं हुईं। मूरत सिंह अपने को ठगा हुआ अनुभव किये और पुन: वे चम्बल के बीहड़ों में कूद पड़े। यदि सुब्बाराव जी जैसा व्यक्ति उन्हें मिला होता, तो इस तरह की घटना नहीं घटित होती।

दूसरा उदाहरण है। जब ७२ का समर्पण हो गया, तब बहुगुणाजी उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री थे। सुब्बाराव जी लखनऊ आए। उन्होंने सोचा कि मैं बहुगुणाजी को बधाई दे दूँ। जब सुब्बाराव जी बधाई देने गए, तो उत्तरप्रदेश के मुख्यमन्त्री बहुगुणाजी बोले, क्यों सुब्बारावजी ! क्या उत्तरप्रदेश के डाकुओं का आत्मसमर्पण नहीं करवाएँगे? तो फिर वह सिलसिला शुरू हो गया। इसी क्रम में मैनपुरी में नाथू की ठोड़ नामक गाँव में डाकुओं के दो ग्रुप थे। एक जनक सिंह का था और दूसरा कामता सिंह का। वहाँ सर्वोदय कार्यकर्ता और अनेक गाँधीवादी लोग थे, जो लोग विहड़ में जाकर डाकुओं से सम्पर्क करते थे। इसी क्रम में सुब्बारावजी ने जनक सिंह से बात किया और जनकसिंह समर्पण के लिए तैयार हो गए।

दूसरे दिन नाथू की ठोड़ में सुब्बाराव जी कामता सिंह से बात करने गये। कामतासिंह से चारपाई पर बैठकर बात कर रहे थे। तीन ओर से वह स्थान घिरा हुआ था, केवल एक ओर से आने-जाने का रास्ता था। काफी भीड़ थी, गाँव के लोग थे, एक पुलिस वाले सादे वर्दी में थे। तभी अचानक गोलियाँ चलने लगीं। ३० मिनट तक ४०० राउंड गोलियाँ चलीं। क्योंकि कामतासिंह के गैंग के लोग भी पुलिस की वर्दी में थे। उधर जनक सिंह के दल के लोगों को ऐसा लगा कि उनके साथ कोई चक्रव्यूह रचा जा रहा है। इस भ्रम में जनकसिंह के दल के लोग दनादन गोलियाँ चलाने लगे। सब लोग भागने लगे। उसमें बहुत से लोग घायल हुए। भाईजी सुब्बाराव जी ने सोचा, मरना तो है ही, क्योंकि उनके सामने ही एक पुलिस को गोली लगी, वह गिरा और मर गया। तो सुब्बारावजी ने सोचा, यदि मरना ही है, तो क्यों न मैं शान्ति से मरूँ और वे वहीं पलथी मारकर ध्यानासन में बैठ गये। इस सम्बन्ध में रामप्रवेश शास्त्री जी ने अपनी पुस्तक में लिखा कि उस समय सब लोग भागे, सुब्बारावजी भी भागे, सब लोग बाहर भागे, किन्तु सुब्बारावजी अन्दर भागे।

अब आप कल्पना कीजिए कि वह कोई साधारण विभूति हो सकती है क्या? लेकिन आाश्चर्य की बात यह है कि साँय-साँय ४०० राउंड गोलियों के चलने के बाद भी सुब्बाराव जी एकदम सुरक्षित बच गये। इस दृश्य ने जनक सिंह और कामता सिंह दोनों को ही प्रभावित किया। वे लोग बिना किसी शर्त के समर्पण करने को उतावले हो गए। अन्त में १९७६ में उत्तरप्रदेश के वटेश्वर में १२३ डाकुओं का आत्मसमर्पण हुआ।

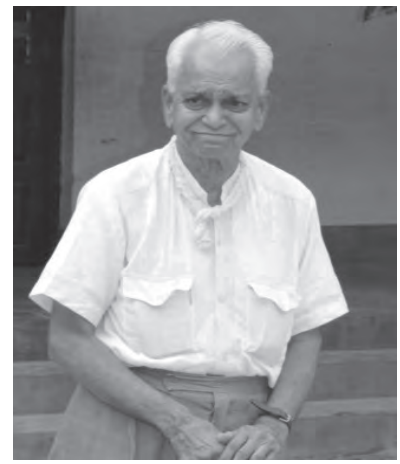

एस.एन.सुब्बाराव 'भाईजी'

पूर्वी उत्तर प्रदेश के कुशीनगर जनपद में बन्धुछपरा नामक एक गाँव है। उस गाँव में अराजक तत्त्वों की बहुलता थी। क्षेत्र के लोग परेशान थे। १९८५ में वहाँ युवा शिविर का आयोजन हुआ। वातावरण बदला। डॉ. शैलनाथ चतुर्वेदी एवं डा. सी.बी. सिंह जैसे व्यक्तियों के प्रयास और भाईजी की प्रेरणा से उस गाँव में काम शुरू हुआ। गाँव का पूरा चरित्र ही बदल गया। उस समय का कुख्यात बदमाश तूफानी नामक युवक आज रचनात्मक कार्यों में लगा हुआ है।

यह एक बहुत बड़ी घटना थी और यह तभी सम्भव हो पाया, जब इस तरह के व्यक्तित्व हमारे पास थे। उनका सान्निध्य पाकर के ही वे डाकू भी अपने स्वभाव को पूर्णतया बदलने में सक्षम हुए, अपने विचार को बदल पाए। एक बार जयप्रकाशजी और भाईजी पगारा में थे। अभी समर्पण नहीं हुआ था। जयप्रकाशजी बैठे हुए थे। जयप्रकाशजी ने सुब्बाराव भाईजी से कहा – आप कोई भजन गाइए। सुब्बाराव जी ने तुकड़ोजी महाराज का बड़ा प्रसिद्ध भजन गाया – 'आया हूँ दरबार तुम्हारे।' वहाँ माधव सिंह जैसे १५० खूँखार बागी डकैत बैठे हुए थे। यह भजन सुनते-सुनते सबकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। क्या दृश्य रहा होगा ! जहाँ सबलोग जिस समस्या का समाधान करने में विफल हुए,

वहाँ साधारण-सा दिखनेवाला असाधारण व्यक्तित्व का धनी खेल कर गया। उन्होंने इतने बागियों के हृदय का रूपान्तरण करा दिया। हृदय-परिवर्तन करने का एक अनुपम उदाहरण विश्वपटल पर रखा। निश्चित रूप से मेरा बार-बार कहना है, चंबल की बंदूकें ही नहीं, किसी भी स्थान की बंदूकें अहिंसा की मूर्ति भगवान बुद्ध और गाँधीजी जैसे लोगों के चरणों में ही समर्पित हो सकती हैं। उन जैसे बुद्ध और गाँधियों की आवश्यकता है और जयप्रकाश नारायण, विनोबा, सुब्बाराव की आवश्यकता है। आज उनके व्यक्तित्व से, उनके व्यवहार से, उनके आचरण से कुछ हमको सीखना पड़ेगा। यदि हम अपने जीवन में अहिंसा, प्रेम, सद्भाव उतारें, तभी हमें कुछ लाभ हो सकता है। क्योंकि इन लोगों ने हमारे सामने उदाहरण प्रस्तुत किया। यह इतिहास के पन्नों की बात नहीं है। अभी-अभी २७ अक्तूबर, २०२१ को एस. एन. सुब्बाराव 'भाईजी' का निधन हुआ है। वे ९२ वर्ष पूरा कर ९३ में चल रहे थे। ७ फरवरी को हम लोग उनका जन्मदिन मनाने वाले थे, लेकिन वे हमलोगों का साथ छोड़ गए। उनके पास निर्मलीकरण का रसायन था। जो लोग भी उनके सान्निध्य में आते थे, वे निर्मल हो जाते थे, उनके व्यक्तित्व में परिवर्तन हो जाता था। सुब्बारावजी, बिनोवाजी के व्यक्तित्व में वह सामर्थ्य थी, वह क्षमता थी कि चंबल के ६५४ खूंखार डाकुओं का आत्मसमर्पण कराकर विश्व इतिहास के पन्नों को अपनी उपस्थिति से गौरवान्वित किया और भावी पीढ़ियों को यह संदेश दिया है कि यदि तुम सचमुच चरित्रवान हो, त्यागी हो, अहिंसावृत्ति के हो, सद्भावनासम्पन्न हो, निश्छल मानव प्रेमी हो और सन्मार्ग के पथिक हो, तो तुम्हारे लिये अत्यन्त कठिन कार्य भी सरल हो जाएगा। यह इतिहास के पन्नों की बात नहीं है, यह हम-सबके सामने की प्रत्यक्ष सच्ची घटना है। इस प्रकार भगवान बुद्ध की अहिंसा आज भी मानव-जीवन में प्रबल प्रासंगिक है। ○○○

पृष्ठ २०५ का शेष भाग

वहाँ छात्रों को सम्बोधित किया था।

१९२२ में, बर्लिन में India Independence League नाम से एक संगठन प्रारम्भ हुआ, जिसके बरकतुल्लाह अध्यथ थे और भूपेन्द्र सचिव। किन्तु जर्मन विदेश कार्यालय ने किसी भी क्रान्तिकारी गतिविधियों से जुड़े लोगों को जर्मनी से निष्कासित करने की धमकी दी, इसलिए यह संगठन जल्दी ही बन्द हो गया। इस संगठन ने अपनी पत्रिका प्रकाशित की थी, जिसमें सोवियत संघ और अन्तर्राष्ट्रीय कम्यूनिज्म में घट रही गतिविधियों को आलोकित किया।

अन्तर्राष्ट्रीय कम्यूनिज्म के संस्पर्श में आने से मिली नयी अभिज्ञता के फलस्वरूप भूपेन्द्र ने भारतीय पत्रिकाओं में अपने विचारों को प्रसारित करना शुरू किया। उनको अब पीएचडी की उपाधि मिल चुकी थी और उन्हें यह अनुभव हुआ कि अब वे भारत जाकर जनसाधारण के बीच कठिन परिश्रम से कार्य करें। इस बात को लेकर उनका सुनिश्चित मत था कि जनसाधारण की मुक्ति का मार्ग ही भारत की मुक्ति का मार्ग है। जनसाधारण की चेतना को जगाना ही पड़ेगा। **(क्रमशः)**

पृष्ठ २१० का शेष भाग

सब्बपापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसंपदा।
सचित्तपरियोदपनं, एतं बुद्धानुसासनं।।

अर्थात् सभी प्रकार के पापों (बुराइयों) का न करना, पुण्यों (अच्छाइयों) का संपादन (संग्रह) करना और अपने चित्त को शुद्ध (संयमित) रखना, यही बुद्ध का शासन (शिक्षा) है।

बौद्ध धर्म विश्व इतिहास में मानव कल्याण के लिए एक विराट धार्मिक क्रान्ति की तरह उपस्थित हुआ, जिसमें मानवता, अहिंसा, करुणा और प्रेम को प्रमुख स्थान मिला। इन सबकी आवश्यकता मानव समाज को प्रत्येक युग में थी, आज भी और आगे भी रहेगी। आज के अशान्त भौतिकवादी युग में बुद्ध के द्वारा दिखाए गये – सत्य, अहिंसा, करुणा, प्रेम और विश्वबन्धुत्व के मार्ग पर चलकर ही, विश्वशान्ति और लोकमंगल की कामना की जा सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. बुद्ध का समाज दर्शन – डॉ. धर्म कीर्ति, २. महामानव बुद्ध – राहुल सांकृत्यायन, ३. करुणामूर्ति बुद्ध – गुणवन्त शाह।

सारगाछी की स्मृतियाँ (११५)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२४-०४-१९६४

महाराज – मैंने इतनी बातें तो कही हैं, किन्तु अब देखता हूँ कि मेरे लिये ठाकुर के चरणों-तले पड़े रहने के अलावा अन्य कोई गन्तव्य नहीं है। वे कृपा करके जिस प्रकार रखते हैं, उसे ही मान लेना होगा। उनसे अनवरत प्रार्थना करने पर मन का अपने आप ही विस्तार होता रहता है और बाधाएँ छँट जाने में उनकी कृपा का अनुभव सम्भव होता है।

२५-०४-१९६४

सेवक ने कई पुस्तकों का पाठ द्रुत गति से किया है। अपराह्न में भ्रमण के समय उसने उन पुस्तकों के बारे में महाराज को बताया।

महाराज – यह जो तेज गति से पठन है, यह एकदम खतरनाक है ! कई बातें सीख लेने के चक्कर में मन में कुछ भी ठीक से नहीं रह पाता, सब उलटा-पुलटा हो जाता है। रास्ते में गम्भीर बातें नहीं कहना ही अच्छा है। ऐसे ही दो-चार हलकी-फुलकी बातें ठीक हैं।

ताराप्रसन्न महाराज बहुत ही जल्दबाजी करते थे। वे परलोक चले गए।

महाराज – ऊर्जा (शक्ति) का संरक्षण होने पर जीवन में प्रचुर सात्त्विक भाव की अभिव्यक्ति होती है।

क्या आज हमलोग पहले चले आए हैं? अन्य मित्रों को यहाँ नहीं देख रहा हूँ। इसीलिये कहा जाता है – 'रमता साधु बहता पानी।'' एक स्थान पर रहने से साधु में आसक्ति आ जाती है, यहाँ आते ही जिनसे भेंट होती थी, उनकी बातें याद आती हैं।

किसी भी प्रकार का एकांगी भाव अच्छा नहीं। एकांगी या एकरस होने पर विकास नहीं होता। ज्ञान, भक्ति, कर्म, योग, इनमें से एक में भी एकांगीपन होने से संकट की सम्भावना बनी रहती है। यहाँ तक कि भक्ति की तो इतनी महिमा है, किन्तु वह भी एकांगी होने पर ठीक से प्रस्फुटित नहीं होती, भावुक होकर कष्ट देती है और विद्वानों की बात तो छोड़ ही दो। अमुक तो साधक, सात्त्विक और सुन्दर है, किन्तु वह क्या-क्या उद्बोधन पत्रिका में लिखता है ! केवल बौद्धिक लिखता है, रामकृष्णमय नहीं।

गीता में एक-एक श्लोक मानो एक-एक सिद्धान्त है–

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।

तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।(८/१४)

'अनन्यचेता' अर्थात् जगत् के प्रति पूरा उदासीन। 'सततं नित्यशः स्मरति' – दीर्घकाल तक निरन्तर आदरपूर्वक मेरा स्मरण करता है। वही नित्युयुक्त योगी है। बिल्कुल एक ही साथ सिद्धान्त और साधना, व्यवहार है।

जगत् में भोगवासना कम करने का एकमात्र उपाय स्वार्थत्याग – (Sacrifice) है। स्वार्थत्याग करने पर बृहत्तर 'मैं' के साथ योग होता है, अपना विस्तार होता है। इसका उपाय है – पुण्य कर्म।

'येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।'' गीता (७/२८) practical Suggetion (व्यावहारिक सुझाव) की पुस्तक है।

मेरी इच्छा है कि मेरा (सेवक) सनातन उस कामारपुकुर को देख पाता ! वर्ष भर में एक बार 'चारो धाम' भ्रमण करके वापस आकर निदिध्यासन करने पर ध्यान में बड़ी सुविधा होती है।

कविता तो दब गई थी। तुम्हारे कारण ही याद आ रही है, मेरा भी नए ढंग से चिन्तन हो रहा है।

अहा ! कामारपुकुर में ठाकुर का जो कक्ष है, उसी कमरे में मैं एक रात रहा, वह सम्पूर्ण धरती पर पवित्रतम स्थान है। मास्टर महाशय को एक दिन दक्षिणेश्वर में ठाकुर की चौकी के खुरदरे और दरारयुक्त पाये को पकड़े हुए देखा

था। वह दृश्य मेरे ध्यान का एक विषय है।

२९-०४-१९६४

एक बाबाजी भोर में करताल बजाकर उत्कट सुर में जोर-जोर से भजन गा रहे थे।

महाराज – संन्यासी के आश्रम में प्रात:काल ध्यानाभ्यास के समय शान्त परिवेश रहना चाहिए। ये जो बाबाजी हैं, बहुत-से लोगों को देखकर इन्हें खूब उद्दीपना हुई है, ये रजोगुणी हैं। फिर मुझमें इनमें क्या अन्तर है? यदि मैं कोई अच्छा नवयुवक पाता हूँ, तो तुरन्त ब्रह्म-ब्रह्म करके उन्मत्त हो उठता हूँ, हम दोनों ही रजोगुण से प्रेरित होकर चल रहे हैं।

हर चीज का ही स्कूल होना चाहिए। स्कूल होने पर बाद में ही एक आन्दोलन होता है। तब उस विषय में व्यवसायात्मिका बुद्धि प्रकट होती है और अच्छे-अच्छे लोग उसमें योगदान करते हैं। विद्यासागर जैसे लोग यदि एक आदर्श विद्यालय आरम्भ करके जाते, तो समाज के सामने एक आदर्श रहता ! यह जो विष्णु घोष है, देखो न स्कूल बनाने में गाँव के अंचल में हल्ला-गुल्ला मचा रहा है।

इस धरती पर किस चीज का भोग करोगे? जिसे ही पकड़ोगे, देखोगे, कितने दिन का है ! यदि किसी के साथ रहो, तो कितने दिन रह सकोगे? वियोग होगा ही। इसीलिए तो एकमात्र संगी-साथी श्रीरामकृष्ण हैं। यदि प्रेम करना ही है, तो भगवान से करो – 'प्रेम-नगर में रहता हूँ और प्रेम से घर बनाया है।'

अहा ! तुम कुछ लोग – विष्णु, आनन्द आदि सभी मिलकर यदि एक साथ, एकजुट होकर कामकाज कर सकते, तो बहुत अच्छा होता। हम लोगों की तो यही धारणा थी कि मठ में साधु लोग रहेंगे। मठ के साधु लोग मिशन में काम करेंगे। हमलोगों ने तो इसी प्रकार से प्रारम्भ किया है। आश्रम के साधु लोग दूरवर्ती गाँवों में जाकर कार्य करके मठ में अपना व्यक्तिगत जीवन बितायेंगे। यह जो (काशी) अद्वैताश्रम है, इसे मठ बनाकर सेवाश्रम को सुन्दर ढंग से मिशन का केन्द्र बनाया जा सकता है। मठ में साधु लोग साधुता का, पवित्रता और दीनता के सिद्धान्त का पालन करेंगे और मानो यहाँ (सेवाश्रम में) थिएटर (रंगमंच) में अभिनय करने हेतु जाएँगे।

इन बाबाजी को देखकर मुझे कष्ट हुआ। कितने ही साधु भ्रमण करते हैं, उनके द्वारा कितनी समाज सेवा हो सकती है। सरकार ने प्रयास किया था, किन्तु उस प्रकार बैठक करके दबाव देकर अग्रसर कराने से परिणाम उलटा हो गया। 'प्रकृते: क्रियमाणानि।'' यहाँ सब देखकर स्पष्ट रूप से समझ गया हूँ, क्या करोगे ! कोई स्वाधीन नहीं है, स्वेच्छा से कोई कुछ नहीं करता है।

०२-०५-१९६४

प्रात:कालीन भ्रमण के समय रामगति महाराज (स्वामी विश्वरूपानन्द, वेदान्तदर्शन ग्रंथ के लेखक) के साथ भेंट हुई। उन्होंने गगन महाराज (श्रीमाँ के सेवक) की मृत्यु का समाचार बताया। वे शरीर-त्याग के दो दिन पहले प्रशान्त हो गए थे। ठाकुर का नाम लेते हुए उनका देहान्त हुआ। रामगति महाराज अस्पताल की अव्यवस्था की बात कहने लगे।

महाराज : क्या तुमने ध्यान दिया? एक ही बात घुमा-फिराकर कितनी बार बोलते रहे। भारत में किसी एक ऐसी संस्था का नाम बताओ, जहाँ सुचारु व्यवस्था है ! एक हजार वर्षों का परतन्त्र है, अब बच्चे (देश) की नींद टूटी है। इस तरह का तहस-नहस या अव्यवस्था होगी ही। देखो न, मेरे शरीर में सिर से पैर तक सर्वत्र अव्यवस्था है। किन्तु ये साधु (रामगति महाराज) अच्छे हैं। इन्होंने ऐसे अपमान को कैसे तुरन्त उड़ा दिया। ये जापक साधु हैं।

इसी समय एक ब्रह्मचारी आए। वे गत रात १२ बजे तक दूध का हिसाब करते रहे।

महाराज : ऐसा तो व्यापारी लोग करते हैं। १२ बजे तक दुकान खोले रहते हैं, १२ बजे तक हिसाब मिलाकर सो जाते हैं।

लोगों को पहचानना बड़ा कठिन है। तुम समझते हो कि अमुक शुद्ध-सत्त्वगुणी है, किन्तु घुल-मिलकर देखो, तो भीतर अनेक अपूर्णताएँ हैं। एक ही व्यक्ति को तुम सुबह सत्त्वगुणी, दोपहर में रजोगुणी और रात में तमोगुणी देखोगे। बाहर तो बहुत देख चुके हो। अब बाहर की ओर देखना बन्द करो। अब भीतर देखना आरम्भ करो।

कोई-कोई ऐसे हैं कि सम्भवत: स्वयं भोग नहीं करते, किन्तु दूसरों के भोग की बातों को रुचि से सुनते रहते हैं। इसका अर्थ है, भीतर भोग करने की लालसा है। जैसे कल उबला हुआ सेब मेरे सामने था, यद्यपि वह मेरे लिए खाने योग्य नहीं था, किन्तु मैंने थोड़ा-सा चख लिया।

शेष भाग पृष्ठ २३६ पर

प्रश्नोपनिषद् (२४)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

अथैकयोर्ध्व उदान: पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन-पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम्।।३/७।।

पदच्छेद : अथ एकया उर्ध्व उदान: पुण्येन पुण्यम् लोकम् नयति पापेन पापम् उभाभ्याम् एव मनुष्य-लोकम्।।

अन्वयार्थ – अथ अब **एकया** उन १०१ नाड़ियों में से एक **ऊर्ध्व** ऊपर की ओर चलनेवाली **उदान:** उदान वायु **पुण्येन** पुण्य कर्मों के द्वारा **पुण्यम् लोकम्** पुण्यलोक में **नयति** ले जाती है; और **पापेन** पाप-कर्मों के द्वारा **पापम्** पापलोक में और **उभाभ्याम्** दोनों अर्थात् मिश्रित कर्मों के द्वारा **मनुष्यलोकम्** मनुष्य-लोक में **एव** ही **नयति** ले जाती है।

भावार्थ – अब उन १०१ नाड़ियों में से एक, ऊपर की ओर चलनेवाली उदान वायु पुण्यकर्मियों को पुण्यलोक में ले जाती है और पाप-कर्मियों को पापलोक में तथा दोनों अर्थात् मिश्रित कर्मियों को मनुष्य-लोक में ही (वापस) ले जाती है।

भाष्य – अथ या तु तत्र एकशतानां नाडीनां मध्ये ऊर्ध्वगा सुषुम्ना-आख्या नाडी तया एकयोर्ध्व: सन् उदानो वायु: आपाद-तल-मस्तक-वृत्ति: सञ्चरन् पुण्येन कर्मणा शास्त्र-विहितेन पुण्यं लोकं देवादि-स्थान-लक्षणं नयति प्रापयति पापेन तद्-विपरीतेन पापं नरकं तिर्यक्-योनि-आदि-लक्षणम्। उभाभ्यां सम-प्रधानाभ्यां पुण्य-पापाभ्याम् एव मनुष्यलोकं नयति इति अनुवर्तते।।३/७।।

भाष्यार्थ – पूर्वोक्त जो एक-सौ-एक नाड़ियाँ थीं, उनमें से एक ऊपर की ओर जानेवाली सुषुम्ना नाम की नाड़ी, ऊर्ध्वगामी होने से – पाँव के तलवों से लेकर मस्तक तक संचार करनेवाला – उदान वायु – शास्त्र-विहित पुण्य कर्मों के द्वारा देव (यक्ष, किन्नर) आदि के स्थान-रूपी लोक की प्राप्ति कराता है, उसके विपरीत पापकर्मों के द्वारा पशु-योनियों आदि रूपी नरक में; और पुण्य-पाप दोनों समान रूप से होने की स्थिति में मनुष्य-लोक में ही वापस ले जाता है।)।।३/७।।

- — —

(आध्यात्मिक 'प्राण-अपान' का स्वरूप बताने के बाद अब आधिदैविक तथा आधिभौतिक 'व्यान-समान' का स्वरूप बताते हैं –)

आदित्यो ह वै बाह्य: प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णान:। पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानम-वष्टभ्यान्तरा यदाकाश: स समानो वायुर्व्यान:।।३/८।।

पदच्छेद : आदित्यो ह वै बाह्य: प्राण उदयति एष हि एनम् चाक्षुषम् प्राणम् अनुगृह्णान:, पृथिव्याम् या देवता सा एषा पुरुषस्य अपानम् अवष्टभ्य अन्तरा यत् आकाश: स समान: वायु: व्यान:।।

अन्वयार्थ – आदित्य: (सूर्य) **ह वै** (निश्चय ही) **बाह्य:** (बाह्य अर्थात् देवतात्मक) **प्राण:** (प्राण है), **हि** (क्योंकि) **एष:** (यह सूर्य) **एनम्** (इस) **चाक्षुषम्** (रूप-प्रकट करने हेतु नेत्र को प्रकाश देता हुआ), **प्राणम्** (प्राण को) **अनुगृह्णान:** (अनुग्रहीत करता हुआ) **उदयति** (उदित होता है)। **पृथिव्यां** (पृथ्वी पर रहनेवाली) **या देवता** (जो देवता (अग्नि) है), **सा एषा** (वही इस) **पुरुषस्य** (पुरुष के) **अपानम्** (अपान वृत्ति को) **अवष्टभ्य** (नियन्त्रित करता हुआ) **अन्तरा** (पृथ्वी तथा द्युलोक के बीच) **यत्** (जो) **आकाश:** (आकाश है), **स:** (वह) **समान:** (समान है), **वायु:** (सर्वव्यापी वायु) **व्यान:** (व्यान है)।।

भावार्थ – वस्तुत: सूर्य बाह्य अर्थात् देवतात्मक प्राण हैं, क्योंकि यह चक्षु को आलोक देकर (रूप या आकृति को प्रकट करके), प्राण को अनुगृहीत करता हुआ उदित

होता है। पृथ्वी पर रहनेवाले जो (अग्नि) देवता है, इस पुरुष की अपान वृत्ति को नियंत्रित करता हुआ – पृथ्वी तथा द्युलोक के बीच जो आकाश है, वह समान है; सर्वव्यापी वायु (ही) व्यान है।।

भाष्य – आदित्यो ह वै प्रसिद्धो हि अधिदैवतं बाह्यः प्राणः सः एषः उदयति उद्-गच्छति। एष हि एनम् आध्यात्मिकं चक्षुषि भवं चाक्षुषं प्राणं प्रकाशेन अनुगृह्णानः रूप-उपलब्धौ चक्षुष आलोकं कुर्वन् इति अर्थः।

भाष्यार्थ – प्रसिद्ध है कि आदित्य, जो अधिदैवत रूप में प्राण की बाह्य अभिव्यक्ति है, वह ऊपर उठता है। वस्तुतः यही प्राण, शरीर के सन्दर्भ में चक्षु में रहकर, प्रकाश देकर अर्थात् रूप आदि की उपलब्धि हेतु नेत्रों को आलोकित करता हुआ अनुगृहीत करता है।

तथा पृथिव्याम् अभिमानिनी या देवता प्रसिद्धा सा एषा पुरुषस्य-अपानम् अपान-वृत्तिम् अवष्टभ्य आकृष्य वशीकृत्य अधः एव अपकर्षणेन अनुग्रहं कुर्वती वर्तते इत्यर्थः। अन्यथा हि शरीरं गुरुत्वात् पतेत् सा अवकाशे वा उद्-गच्छेत्।

वैसे ही, जो पृथ्वी के अभिमानी (मैं पृथ्वी हूँ – ऐसे भाववाले) जो देवता प्रसिद्ध हैं, वे ही इस पुरुष के (पायु-उपस्थ में बैठे) अपान वृत्ति को नियन्त्रण में लेकर, वशीभूत करके नीचे की ओर खींचते हुए अनुग्रह करते हैं। नहीं तो, शरीर भारी होने के कारण या तो (नीचे की ओर) गिर जाएगा, या फिर उन्मुक्त होने पर (ऊपर की ओर) उड़ जाएगा।

यत् एतत् अन्तरा मध्ये द्यावा-पृथिव्योः य आकाशः तत्स्थो वायुः आकाश उच्यते; मञ्चस्थवत्। स समानः समानम् अनुगृह्णानः वर्तते इति अर्थः।

द्युलोक तथा पृथिवी के बीच में यह जो आकाश है, उसमें स्थित वायु को आकाश कहते हैं, जैसे मंच पर स्थित व्यक्ति को मंच ही कह देते हैं। तात्पर्य यह कि समान वायु, समान रूप से अनुग्रह करते हुए स्थित रहता है।

समानस्य अन्तर-आकाशस्थत्व-सामान्यात्। सामान्येन च यः बाह्यः वायुः सः व्याप्ति-सामान्याद्-व्यानः व्यानम् अनुगृह्णानः वर्तते इति अभिप्रायः।।८।।

वह 'व्यान' अन्तर-आकाश में स्थित वायु के समान ही है। समान रूप से पूर्णतः व्यापक होने से वह 'व्यान' कहलाता है। तात्पर्य यह है कि सामान्य वायु सर्वत्र व्याप्त है; वह 'व्यान' (नामक प्राण-क्रिया) पर अनुग्रह करता हुआ स्थित है।।३/८।। **(क्रमशः)**

पृष्ठ २२० का शेष भाग

– इसी में एक भाग जो लोग दण्डकारण्य में गये हैं, वे लोग जमीन आदि लेकर अच्छी स्थिति में हैं।

महाराज – दण्डकारण्य की बात अब और मत कहो। पामानजोड़ में मैं कई बार गया हूँ। वहाँ जो लोग घर बनाये थे, कुछ दिन बाद उनलोगों के पास एक दल ने आकर कहा – तुमलोग यहाँ क्या कर रहे हो? हमलोगों के पास चले आओ। सुन्दरवन में वहाँ तुमलोगों की व्यवस्था कर दूँगा। पशु और टीन सरकार ने दिया था। साथ-साथ वे वह सब बेचकर चले गये। जाकर देखते हैं कि जमीन आदि तो कुछ भी नहीं है, जिन लोगों ने कहा था, वे लोग भी नहीं दिख रहे हैं। तब उन लोगों ने कहा कहाँ जाऊँ? सरकार ने कहा – हम लोगों ने दिया था, किन्तु तुमलोग रहे नहीं, चले गये। हमलोग दोबारा कहाँ से देंगे? उन सबने कहा – अब हमलोगों के लिए क्या उपाय है? जो भी हो, सरकार बाद में फिर से उनलोगों को कुछ-कुछ दी थी। **(क्रमशः)**

भगवान बुद्ध के उपदेश

पुण्य कर्म

१. सत्पात्र को दान कर।
२. नैतिकता के नियमों का पालन कर।
३. शुभ विचारों का अभ्यास और विकास कर।
४. दूसरों की सेवा और देखभाल कर।
५. माता-पिता और बड़ों का सम्मान कर और उनकी शुश्रूषा कर।
६. अपने पुण्य का भाग दूसरों को दे।
७. दूसरों के द्वारा दिये गये पुण्य को स्वीकार कर।
८. सम्यकता कृता के सिद्धान्त का श्रवण कर।
९. सम्यकता के सिद्धान्त का प्रचार कर।
१०. अपनी त्रुटियों का सुधार कर।
११. बकवाद में समय न गँवाओ, पर काम में लगे रहो या चुप रहो ।

गीतातत्त्व-चिन्तन (२)

ग्यारहवाँ अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ११वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम्।।२।।
एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम।।३।।
मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्।।४।।

कमलपत्राक्ष (हे कमलनेत्र!) हि मया त्वत्तः भूतानाम् (क्योंकि मैंने आपसे भूतों के) भवाप्ययौ विस्तरशः (जन्म और नष्ट होने को विस्तारपूर्वक) श्रुतौ च (सुना है तथा) अव्ययम् माहात्म्यम् अपि (आपकी अविनाशी महिमा भी सुनी है) परमेश्वर (हे परमेश्वर !) त्वम् आत्मानम् यथा आत्थ (आप अपने को जैसा कहते हैं) एतत् एवम् (यह ऐसा ही है) पुरुषोत्तम (हे पुरुषोत्तम!) ते ऐश्वरम् रूपम् (मैं आपके ऐश्वर्यमय रूप को) द्रष्टुम् इच्छामि (देखना चाहता हूँ) प्रभो (हे भगवन् !) यदि मया (यदि मेरे द्वारा) तत् द्रष्टुम् शक्यम् (आपका वह रूप देखा जाना सम्भव है) इति मन्यसे (ऐसा आप मानते हैं) ततः योगेश्वर (तो हे योगेश्वर !) त्वम् आत्मानम् अव्ययम् (आप अपने उस अविनाशी स्वरूप) मे दर्शय (का मुझे दर्शन कराइये)।

''हे कमलनेत्र ! क्योंकि मैंने आपसे भूतों के जन्म और नष्ट होने को विस्तारपूर्वक सुना है तथा आपकी अविनाशी महिमा भी सुनी है।''

''हे परमेश्वर ! आप अपने को जैसा कहते हैं, यह ऐसा ही है, परन्तु हे पुरुषोत्तम ! मैं आपके ऐश्वर्यमय रूप को देखना चाहता हूँ।''

''हे प्रभो ! यदि मेरे द्वारा आपका वह रूप देखा जाना सम्भव है, ऐसा आप मानते हैं, तो हे योगेश्वर ! आप अपने उस अविनाशी स्वरूप का मुझे दर्शन कराइये।''

इस चराचर सृष्टि में समस्त भूतों के जन्म होने और नष्ट होने के बारे में भी मैंने सुना और आपके स्वरूप की महिमा का ज्ञान भी हुआ। आपने अपने सम्बन्ध में जो कुछ भी बताया उसके प्रति किञ्चिन्मात्र भी संशय मेरे मन में नहीं है। आपके उस ऐश्वरमय रूप को देखना चाहता हूँ। उस रूप को देखने योग्य योग्यता आप मुझमें मानें, तो कृपया अपने उस अविनाशी रूप के दर्शन मुझे करा दें। इतना विनीत है इतना विनम्र है अर्जुन इसीलिए भगवान का इतना स्नेह उसे मिला कि उन्होंने कह दिया – **पाण्डवानां धनंजयः।** अर्जुन के इस कथन में उसकी सारी साधना, सारे पुरुषार्थ का सार है। ईश्वर को देखने की अर्जुन के मन की अनुकूलता भी उसके इस वाक्य में ध्वनित होती है।

भगवान को अर्जुन के सम्बन्ध

यहाँ पर इन तीन श्लोकों में अर्जुन ने भगवान के लिए कई विशेषणों का प्रयोग किया है। प्रभु की कृपा से गद्‌गद् हुए शब्द उसके हृदय से निकले थे, वे सब सम्बोधन हैं। उसके हृदय की कृतज्ञता को प्रकट करते हैं। भगवान की कृपा से अर्जुन को ज्ञान हुआ और उसके कारण वह गद्‌गद् हो गया। अर्जुन ने भगवान को 'कमलपत्राक्ष' कहकर सम्बोधित किया। इस नाम को सुनकर कल्पना होती है कि कमल की पंखुड़ियों-सी उनकी आँखें हैं। वैसी ही कोमल उनकी दृष्टि है और उनके नेत्रों से असीम करुणा टपक रही है। अतः यह एक अत्यन्त तत्त्वयुक्त सम्बोधन है। उनकी

उसी करुणा के नाम पर अर्जुन यह साहस जुटा पाया है कि उनके स्वरूप को देखने के लिये विनम्रता से प्रार्थना करे। फिर अर्जुन उन्हें कहता है परमेश्वर! अर्जुन कोई बात यों ही बड़ाई करने या उन्हें प्रसन्न करने के लिए नहीं कहता। इस सम्बोधन में उसका भाव है। वह हृदय से अनुभव करता है कि वही परमेश्वर हैं, जिनकी विभूति का वर्णन इससे पहले के अध्याय में उन्हीं के मुँह से सुन चुका है और पूरी तरह उससे प्रभावित है। उनकी महिमा को जानते हुए ही अपनी सहमति देता है – आप जैसा कह रहे हैं, वह बिल्कुल सत्य है। परमेश्वर कहकर अर्जुन के मन में भाव उठा कि कहीं उन्हें परमेश्वर कहकर मैंने अपने आपसे दूर तो नहीं कर दिया? इसीलिए उनसे निकटता का सम्बन्ध दर्शाने के लिए बाद में उन्हें कहता है – पुरुषोत्तम। अर्थात् आप भी पुरुष हैं, मैं भी पुरुष हूँ, पर आप पुरुषों में उत्तम हैं। इस निकटता के कारण ही मैं आपसे अपने स्वरूप को मुझे दिखाने के लिए कहने का दुस्साहस कर सका। अर्जुन ने भगवान की विभूति को भी देखा और समझ लिया कि वे विद्या, बल, ऐश्वर्य सबमें अर्जुन से बहुत बड़े हैं। इसीलिए उसके मन में उनके प्रति स्वामी और अपने लिए सेवक का भाव उदय हुआ। इसीलिए उन्हें प्रभु कहकर सम्बोधित करता है। इतनी तरह के इतने योगों की बातें कृष्ण ने अर्जुन को सुनाईं, उसी से कृतकृत्य होकर उसने उन्हें योगेश्वर नाम दिया। वह जान गया कि वे समस्त योगों के ज्ञाता हैं। उनकी कृपा हो जाए, तो मनुष्य उनके बताए किसी भी पथ से जाकर उन्हें प्राप्त कर सकता है। अर्जुन की प्रार्थना को स्वीकार करके भगवान अपना ऐश्वर्यमय विराट रूप उसे दिखाते हैं। अद्‌भुत दर्शन ! प्रसन्नतापूर्वक भगवान अर्जुन से कहते हैं – तू मेरे सैकड़ों हजारों रूप देख ले। मुझे नाना वर्णों में देख ले। नाना आकृतियों में देख ले।

दिव्य चक्षुओं द्वारा भावराज्य में ईश्वर दर्शन

श्रीभगवान उवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च।।५।।

श्रीभगवान उवाच (श्रीभगवान बोले) पार्थ (हे पार्थ!) अथ मे शतशः सहस्रशः (अब मेरे सैकड़ों हजारों) नानाविधानि नानावर्णाकृतीनि च (नाना प्रकार के और नाना वर्ण आकृतियों के) दिव्यानि रूपाणि पश्य (दिव्य रूपों को देख)।

''हे पार्थ ! अब मेरे सैकड़ों हजारों नाना प्रकार के और नाना वर्ण आकृतियों के दिव्य रूपों को देख।''

भावराज्य में हर्ष आदि जो वृत्तियाँ होती हैं, उनको दिव्य कहते हैं। इस ग्यारहवें अध्याय में जहाँ-जहाँ दिव्य शब्द का प्रयोग किया गया है, वहाँ-वहाँ भावराज्य की बातें हैं। भावराज्य की घटनाएँ हैं, जो इन्द्रियों की पकड़ में नहीं आतीं। भावराज्य की बातें सूक्ष्म हुआ करती हैं। इसके विपरीत बाहर की जो बातें हैं वे स्थूल हैं। तीन प्रकार की अवस्थाओं का हम रोज भोग करते हैं। पहली है जाग्रतावस्था, जिसमें हमारी बाहर की इन्द्रियाँ – कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ काम करती हैं। दूसरी है स्वप्नावस्था, जिसमें कर्मेन्द्रियाँ नहीं, मन ही, अन्तःकरण ही काम करता है। तीसरी है, सुषुप्तावस्था, जिसमें कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ, अन्तःकरण कोई काम नहीं करते। ठीक ऐसी ही अवस्थाएँ संसार को लेकर भी उपस्थित होती है। जिसको हमने ईश्वर कहकर पुकारा, ब्रह्म कहा, जो नियामक शक्ति है, उसका भी हमारी ही तरह स्थूल शरीर है। उसको हम विराट् शरीर कहते हैं। इस विराट् शरीर का हम अपनी इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष कर लेते हैं। परन्तु इस विराट् शरीर के पीछे जो उनका सूक्ष्म शरीर है, जो भावराज्य का शरीर है, जिस शरीर का दर्शन अर्जुन ने किया, यह जो भगवान का दिव्य स्वरूप देखा उसने, जिसको विराट् कहकर पुकारा हमने, वह विराट् स्थूल का विराट् नहीं था, वह सूक्ष्म का विराट् था। जैसे सपने में जो कुछ हम देखते हैं, उसे हम इन्द्रियों के द्वारा नहीं, मन के द्वारा, अन्तःकरण के द्वारा देखते हैं। सपने में, हम कहीं चले जा रहे होते हैं। बीच में कहीं कोई वन-प्रान्तर मिलता है, जो अद्‌भुत सुगन्ध से भरा होता है और उस सुगन्ध का अनुभव करके हम अत्यन्त प्रसन्न भी होते हैं, किन्तु नींद से जागने पर कहीं कुछ नहीं होता। वह इन्द्रियों के माध्यम से नहीं, अन्तःकरण की वृत्तियों के द्वारा हमें वे अनुभव हुए थे, ऐसा समझ में आता है। ऐसे दर्शनों में इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं होती, पर फिर भी दर्शन तो होता है। स्वप्नावस्था में पाए जानेवाले उस दर्शन को विराट् रूप के दर्शन को अर्जुन ने जागते हुए पाया। भगवान ने अपने दर्शन कराने के लिए अर्जुन को दिव्य चक्षु दिए, इसका तात्पर्य यह है कि इन्द्रियों के माध्यम से तो उन्हें देखा नहीं जा सकता था, इसीलिए उनका दर्शन पाने के लिए अर्जुन को दिव्य चक्षुओं की आवश्यकता थी। दिव्य-चक्षु का अर्थ

है दिव्य-भाव और भाव-जगत् में, सूक्ष्म-जगत् में, घटनाएँ पहले घट जाती हैं और स्थूल-जगत् में वही घटनाएँ बाद में घटती हैं। इसीलिए जो सूक्ष्म-जगत् को जान लेता है, वह तो फिर स्थूल-जगत् को जान ही लेगा।

भविष्य का ज्ञान कैसे?

अर्जुन जब युद्ध करने में हिचकिचा रहा था, तब भगवान ने उसे जो उपदेश दिया कि वहाँ उपस्थित योद्धा तो भगवान के द्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं और अर्जुन को तो बस उनके मारे जाने का निमित्त भर बनना है। भगवान के इस कथन का तात्पर्य यह था कि वे सब घटनाएँ पहले ही घट चुकी होती हैं और वहीं घटनाएँ आकर बाद में स्थूल जगत् में उतरती हैं।

जो भविष्यद्रष्टा होते हैं, जो अतीत और भविष्य की बातों को जान लेते हैं, वे सूक्ष्म धरातल पर जाने में समर्थ होते हैं, भाव-जगत् की घटनाओं को पकड़ सकते हैं। वे स्थूल-जगत् की बातों को भी जान लेते हैं। इस समय सूक्ष्म-जगत् में जो घट रहा है, वह बहुत पहले ही सूक्ष्म-जगत् में घट चुका है। इसीलिए वहाँ पर भगवान अर्जुन को वह सूक्ष्म-जगत् दिखाते हैं। जैसे कोई जादूगर जादू दिखाता है वह स्वयं तो पहले से जानता ही है कि वह कैसा-कैसा जादू दिखानेवाला है, पर दर्शक तो वह बात नहीं जानता। इसीलिए जादू के खेल देखकर दर्शक तो अचरज में डूब जाता है, पर जादूगर को जरा भी फर्क नहीं पड़ता। उसने तो बस अपने भाव-जगत् की कल्पना में जो-जो नियत कर लिया है, उसे स्थूल-जगत् में दिखा देता है। दर्शक अचरज में डूबता है, क्योंकि उसके भाव-राज्य की बातों को पकड़ नहीं पाता। ठीक इसी प्रकार इस संसार में घटनेवाली घटनाओं को देखकर हम बहुत आश्चर्यचकित हो जाते हैं, उनको देखकर सुखी या दुखी हो जाते हैं, पर जो भाव-जगत् में होनेवाली सूक्ष्म घटनाओं को पकड़ने में समर्थ है, उनको स्थूल-जगत् में होनेवाली घटनाओं से इसलिए सुख या दुख नहीं होता, क्योंकि वे पहले से ही उन घटनाओं को घटते देख चुके हैं।

अपना विराट् रूप दिखाते हुए भगवान अर्जुन को वह सब दिखा देते हैं, जो भविष्य में घटनेवाला है। दिव्य शब्द का तात्पर्य यहाँ भाव-राज्य से ही है। द्वादश आदित्य, अष्ट-वसु, एकादश रुद्र, दो अश्विनीकुमार, उन्चास मरुत् आदि जगत् का संचालन करनेवाली सूक्ष्म शक्तियाँ ही स्थूल शक्तियों को धारण करती हैं। स्थूल शक्तियों का कारण यही सूक्ष्म शक्तियाँ होती हैं। इन्हीं सूक्ष्म शक्तियों के सहारे जगत् धारित होता है। किसी प्रकार का व्यतिक्रम उसमें नहीं होता। यही कारण है कि विज्ञान के बल पर वैज्ञानिक आज नियमों को खोजने में समर्थ हो रहा है, गणित की गणना के बल पर वह हिसाब लगा लेता है, इनके आधार पर जाकर चन्द्रमा के धरातल पर भी उतर जाता है। वह इसीलिए सम्भव हो पाता है कि किसी प्रकार का व्यतिक्रम भगवान के नियम में नहीं है। उन्हीं नियमों के ये रक्षक हैं, जो आदित्य, वसु, रुद्र आदि लगाते हैं। इन्हीं सबके ऊपर वह मेरी आत्मा, वह मेरा आत्मतत्त्व, वह मेरा असली रूप है, जिसको हम परमेश्वर के नाम से पुकारते हैं।

भगवान अर्जुन से कहते हैं, इन सबकी बात तो मैंने तुमसे कही, पर इनसे भी बहुत पहले के रूप तू देख ले, जिन्हें किसी ने पहले कभी नहीं देखा होगा। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसे रूप उन्होंने पहले किसी को नहीं दिखाए। क्यों नहीं दिखाए? यहाँ पर जो अपना रूप दिखाते हैं, उसकी विशेषता बताते हैं, उनका कालस्वरूप होना। भगवान कहते हैं, मैं काल हूँ और सबका नाश करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूँ। यह कालरूपी है विराट्। यहाँ पर भगवान काल के रूप में संचरण करते हैं। अन्य प्रकार के अपने रूप भले ही वे किसी को दिखाते हों, पर यह रूप उन्होंने अब तक किसी को नहीं दिखाया था।

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरूतस्तथा।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत।।६।।
इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि।।७।।

भारत (हे अर्जुन !) आदित्यान् वसून् रुद्रान् अश्विनौ मरुत: पश्य (आदित्यों को, वसुओं को, रुद्रों को, अश्विनियों को, मरुतों को देख) तथा बहूनि अदृष्टपूर्वाणि (तथा बहुत से अपरिचित) आश्चर्याणि पश्य (आश्चर्यमय रूपों को भी देख) गुडाकेश (हे अर्जुन!) अद्य इह मम देहे (अब इस मेरे शरीर में) एकस्थम् कृत्स्नम् सचराचरम् (एक साथ सम्पूर्ण चराचर) जगत् पश्य (जगत को देख) अन्यत् च यत् (और भी जो) द्रष्टुम् इच्छसि (देखना चाहता हो देख)।

''हे अर्जुन ! आदित्यों को, वसुओं को, रुद्रों को, अश्विनियों को, मरुतों को (मेरे शरीर में) देख तथा बहुत से अपरिचित आश्चर्यमय रूपों को भी देख।''

''हे अर्जुन ! अब इस मेरे शरीर में एक साथ सम्पूर्ण चराचर जगत को देख और भी जो देखना चाहता हो, देख।''

भगवान कहते हैं, अर्जुन, यह शरीर जो तुझे सामने दिखाई दे रहा है, इसी शरीर में सारे सचराचर विश्व को तू देख। हे गुडाकेश ! हे इन्द्रियजित्, निद्राजित ! और भी जो कुछ तू देखना चाहे, इसी मेरे एक शरीर में देख ले। जो भी तू देखना चाहता है, वह सम्भावना के रूप में मेरे अन्दर विद्यमान है। जिस किसी भी रूप की कल्पना की जाती है, वह रूप कहीं-न-कहीं विद्यमान अवश्य होता है, तभी तो उसकी कल्पना होती है। कल्पना का आधार अवश्य होता है। 'जो भी इच्छा हो, वह मुझमें देख सकते हो' ऐसा कहने का भगवान का तात्पर्य यह है कि भगवान को छोड़कर तो कहीं कुछ है ही नहीं और जो कुछ भी यहाँ विद्यमान है, उसमें भगवान ओतप्रोत होकर व्यापक रूप से स्थित हैं। ऐसा भी अर्थ कर सकते हैं कि अर्जुन के मन में प्रश्न उठा था – पता नहीं हम जीतेंगे या कौरव जीत जाएँगे। उस शंका का उत्तर भी अपने भीतर देख लेने के लिए भगवान अर्जुन से कह रहे हैं – **(क्रमशः)**

पृष्ठ २०० का शेष भाग

उनका अहिंसा-आन्दोलन राजनीतिक क्षेत्र में प्रसिद्ध हुआ, जो सम्भवतः ब्रिटिश शासन के विरुद्ध कायिक हिंसा न करने का था। किन्तु गाँधीजी और विनोबाजी ने व्यक्तिगत जीवन में पूर्णतः अहिंसा का पालन किया।

भगवान बुद्ध की अहिंसा कायिक अहिंसा के अतीत जाकर वाचिक, मानसिक स्तर पर थी, जो साधना का प्रमुख अंग थी और मानव को उसकी लक्ष्य-प्राप्ति में परम सहायक थी। वाचिक, मानसिक स्तर पर अहिंसा में प्रतिष्ठित व्यक्ति से कायिक हिंसा नहीं हो सकती।

क्या अहिंसा आज प्रांसगिक है?

प्रश्न उठता है कि क्या अहिंसा आज के परिप्रेक्ष्य में समाज में व्यवहारिक और प्रासंगिक है? मुझे लगता है कि आज देश की सीमाओं एवं अन्तर्बाह्य अन्य आततायियों से रक्षार्थ किये गये प्रहार को छोड़कर जन-सामान्य में अहिंसा का पालन कम-से-कम कायिक-वाचिक स्तर पर अवश्य होना चाहिए और यह सम्भव है। मानसिक इसलिये नहीं कि मन इतना चंचल है कि तीव्र वेग से आ रहे विचारों को रोकना सामान्य व्यक्ति के लिये दुष्कर है। इसलिये अच्छे विचारों को अपनाएँ और बुरे विचारों को क्रियान्वित न करें। आज देश के कोने-कोने से गृह-कलह, पड़ोसी से विवाद, लूट, राजनैतिक कारणों से हत्या की सूचनाएँ समाचार-पत्रों में नित्य प्रकाशित होती रहती हैं, यदि समाज का प्रत्येक व्यक्ति कम-से-कम कायिक-वाचिक स्तर पर भी अहिंसा का पालन करे, तो न्यायालय के मुकदमें कम हो जायेंगे, देश की अधिकांश समस्याओं का समाधान स्वयं हो जायेगा, परस्पर सद्भाव, प्रेम विकसित होगा, लोग प्रसन्न रहेंगे और अपनी ऊर्जा-शक्ति को आत्मविकास और राष्ट्र-विकास में लगा सकेंगे। ○○○

पृष्ठ २११ का शेष भाग

लोकमान्य तिलकजी की पुण्य तिथि का आयोजन किया। सभी विद्यार्थियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। विद्यालय के अन्य शिक्षक उनकी गतिविधियों को पसन्द नहीं करते थे। शिक्षकों ने शिक्षा विभाग के अधिकारी को उनकी गतिविधियों के बारे में शिकायत की। विभाग से प्रधानाध्यापक को पत्र आया कि तुम्हारे विद्यालय में देशद्रोही गतिविधियाँ चल रही हैं, उन्हें तुरन्त बन्द करो।

प्रधानाध्यापक ने उमाकान्त आपटे को बुलाया और उनसे कक्षा में पाठ्यक्रम के अतिरिक्त कुछ अन्य पढ़ाने से मना किया। उमाकान्त आपटे ने प्रधानाध्यापक से कहा –'श्रीमान् जी, आप मुझसे आयु में बड़े हैं, इसलिए मैं कुछ अधिक तो नहीं कहूँगा, लेकिन इतना अवश्य कहूँगा कि जिस विद्यालय में राष्ट्रभक्त लोकमान्य तिलकजी का नाम तक लेना मना है, वहाँ मैं स्वयं नहीं रहना चाहता हूँ।' यह कहकर उन्होंने मेज पर अपना त्यागपत्र रख दिया और प्रधानाध्यापक को प्रणाम कर विद्यालय से बाहर निकल आये।

श्री उमाकान्त आपटेजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्रसेवा के लिए समर्पित किया। वे सदा ही बच्चों के लिए प्रेरणा स्रोत हैं। ○○○

साधुओं के पावन प्रसंग (४१)

स्वामी सर्वज्ञानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

स्वामी सर्वज्ञानन्द जी महाराज

स्वामी शिवानन्द स्मृति

१९२१ ई. में मद्रास मठ में मैंने राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) के साथ महापुरुष महाराज का दर्शन किया था। कीर्तन के समय वह तबला बजाते थे। वे बहुत गम्भीर स्वभाव के थे, इसलिये सभी उनके पास जाने का साहस नहीं करते थे। एक बार स्वामी श्रीनिवासानन्द के द्वारा महापुरुषजी का एक चित्र खींचने जाने पर, उन्होंने मना किया। तत्पश्चात् श्रीनिवासानन्द जब भी उनका चित्र लेने का प्रयास करते महापुरुषजी सिर हिलाते थे।

महापुरुषजी बेलूड़ मठ के दो मंजिला पर ठाकुर मन्दिर के पास वाले कमरे में रहते थे। मैं एक दिन डरते-डरते उनके कमरे में उनका दर्शन करने गया। दरवाजा के फ्रेम पकड़कर मैंने कमरे में भीतर थोड़ा-सा झाँक कर देखा, वे एक साधारण कैनवास की कुर्सी पर बैठे हुए हैं। वे समझ गये कि मैं उनको प्रणाम करने आया हूँ। अकस्मात् मुँह से एक शब्द करके उन्होंने दोनों हाथों से ताली बजायी। मैं भय से लकड़ी की सीढ़ी से तेजी से नीचे उतर गया। पीछे मुड़कर देखा कि महापुरुषजी दरवाजा के सामने खड़े होकर बच्चे जैसा हँस रहे हैं। इस घटना से उनके प्रति मेरा भय और भी बढ़ गया।

इसके बाद मैं मद्रास मठ में ब्रह्मचारी होकर सम्मिलित हुआ और १९२६ ई. में पुन: महापुरुषजी का दर्शन किया। मैं और रुद्रानन्द को छोड़कर बाकी सब संन्यासी उनकी अभ्यर्थना करने के लिए मद्रास स्टेशन पर गये थे। मेरे अन्दर अभी भी उनके प्रति वही पुराना भय था। मैं जहाँ पर खड़ा था, महापुरुषजी वहीं पर गाड़ी से उतरे तथा जिस प्रकार माँ अपने सन्तान की ओर देखती है, उसी प्रकार उन्होंने मेरी ओर देखा। मुझे ऐसा लगा कि वे पूरी तरह से बदल गये हैं और मेरा सब भय चला गया।

प्रत्येक दिन जप-ध्यान के उपरान्त हमलोग उनको प्रणाम करने के लिए उनके कमरे में जाते थे। कभी वे बातें करते, तो कभी कहते ऑल राईट और कभी चुपचाप बैठे रहते थे। एक दिन जब मैंने उनको प्रणाम किया, तो उन्होंने मेरा नाम पूछा। मैंने अपना नाम बताया। उसके अगले दो दिन भी उन्होंने मेरा नाम पूछा और कहा, ''देखो, मैं तुम्हारा नाम भूल जा रहा हूँ। क्या मैं तुमको एक नाम दूँ?'' मैं चुपचाप खड़ा था। अन्यान्य संन्यासियों ने मुझे संकेत से हाँ कहने के लिए कहा। किन्तु मैं इतना शर्मिला था कि कुछ भी कह नहीं सका। तब उन्होंने कहा, ''तुम्हारा नाम 'भजहरि' हुआ। इसका अर्थ क्या है, जानते हो? इसका अर्थ है – भगवान की पूजा करना।'' मैं निर्वाक् होकर खड़ा ही रह गया। अकस्मात् उन्होंने 'भजहरि हरि भज, भजहरि हरि भज' कहते नृत्य करने लगे। सभी हँसने लगे। उन्होंने कहा, ''यही हुआ तुम्हारा नाम।'' उसी समय से मेरा नाम हुआ 'भजहरि'।

एक दिन मैंने उनसे पूछा, ''महाराज, आपने कहा था, ठाकुर ने आपके जीभ पर क्या लिख दिया था, जिससे आपने कुण्डलिनी के विभिन्न चक्रों पर चेतना का अनुभव किया था। आप क्या अभी भी वह अनुभव करते हैं?'' इस बात को सुनकर सभी मेरी ओर आँखें बड़ी करके यह बताना चाह रहे थे कि मेरे द्वारा इस प्रकार का व्यक्तिगत प्रश्न पूछना उचित नहीं हुआ। किन्तु महापुरुष महाराज ने कहा, ''हाँ, मैं अभी भी वह अनुभव करता हूँ।''

और एक दिन महापुरुष महाराज ने कहा, ''भजहरि, तुम नटरमपल्ली जाकर स्वामी... का सेवा-कार्य स्वीकार

करो, जिससे वह कुछ दिन मेरे पास रह सके।'' मैंने कहा, ''महाराज, मैं नहीं जाना चाहता। आप मद्रास में बहुत कम ही आते हैं, अगर मैं चला जाऊँगा, तो आपके सत्संग से वंचित हो जाउँगा। आप किसी अन्य को भेजिए।'' महाराज हँसने लगे। मैं जब कमरा से बाहर निकलकर आया, तब अन्यान्य संन्यासियों ने मेरे अपने गुरु तथा संघ के गुरु के प्रति असम्मानजनक व्यवहार के लिए मुझे डाँटा। मैं पुन: महापुरुष महाराज के कमरे में जाकर क्षमा माँगा और कहा, ''महाराज, मैं नटरमपल्ली जाऊँगा।'' उन्होंने कहा, ''नहीं, तुम मेरे पास ही रहो।'' उन्होंने मेरे स्थान पर स्वामी चिद्भवानन्द जी को वहाँ भेजा।

एक अन्य दिन मैं बगीचा में पुष्प चयन कर रहा था। महापुरुष महाराज ने मुझे खिड़की से देखकर कुछ पुष्प माँगा। मैं पुष्प देने में संकोच कर रहा था। क्योंकि, स्वामी अनन्तानन्द जी ने मुझसे कहा था कि ठाकुर के पूजा-पुष्प में से अग्रभाग किसी को मत देना। उन्होंने मुझे और भी सिखाया था कि पूजा के पुष्प शरीर, वस्त्र या केश से स्पर्श नहीं होने चाहिए तथा पूजा-घर में ले जाने से पहले उसे धो देना चाहिए। मेरे संकोच को देखकर महापुरुष महाराज ने कहा, ''भजहरि, मैं ठाकुर-मन्दिर में जा रहा हूँ। मुझे कुछ पुष्प दो। मैं ठाकुर को अर्घ्य दूँगा।'' तब मैंने उनको कुछ पुष्प दिया।

महापुरुष महाराज को कभी-कभी पीठ में दर्द होता था। वे प्रतिदिन घूमते थे। दर्द से आराम पाने हेतु उन्होंने एक दिन राघवन को मालिश करने के लिए कहा। किन्तु राघवन का मालिश पसन्द नहीं होने पर उन्होंने मुझे मालिश करने के लिए कहा। मेरा बहुत सौभाग्य था कि मुझे मेरे गुरुदेव की व्यक्तिगत सेवा करने का सुयोग मिला था।

१९२७ ई. में स्वामी सारदानन्द जी महाराज के महासमाधि के उपरान्त मैंने महापुरुष महाराज को बेलूड़ मठ के दर्शन हेतु पत्र लिखकर अनुमति माँगी थी। उन्होंने उत्तर में लिखा, ''अध्यक्ष स्वामी यतीश्वरानन्द की अनुमति लेकर तुम आना।'' मैं उनके आदेशानुसार अध्यक्ष की अनुमति लेकर बेलूड़ मठ गया। महाराज ने हमारा बहुत स्वागत किया। उन दिनों बेलूड़ मठ में दक्षिण-भारतीय संन्यासी कम थे; फिर भी वे हमारे लिए रसम, साम्भर, खट्टा दही की व्यवस्था करते थे।

उस वर्ष विभिन्न केन्द्रों से कई ब्रह्मचारी संन्यास हेतु बेलूड़ मठ आये थे। महापुरुष महाराज ने मुझसे पूछा, ''भजहरि, तुम संन्यास लोगे?'' मैंने कहा, ''नहीं महाराज, इस वर्ष नहीं लूँगा। नियमानुसार मेरा संन्यास ढेड़ वर्ष पश्चात् होगा।'' जब कमरा से बाहर आ गया, तब अपूर्वानन्दजी ने मुझे संन्यास लेने हेतु सहमत नहीं होने पर डाँटा। मैंने उनको कहा, ''अभी संन्यास ले लेने पर बहुत दिन तक मैं बेलूड़ मठ नहीं आ पाऊँगा।''

१९३० ई. में मैंने पुन: बेलूड़ मठ आकर महापुरुष महाराज से स्वामीजी की जन्मतिथि पर संन्यास हेतु प्रार्थना की। उन्होंने कहा, ''ओहो ! तो तुम स्वामीजी की जन्मतिथि पर संन्यास चाहते हो। हाँ, स्वामीजी की जन्मतिथि भी ठाकुर की जन्मतिथि जैसी पवित्र है। तुम शुद्धानन्द के पास जाकर अपना नाम सूची में लिखवा दो।'' स्वामी शुद्धानन्द जी के पास जाकर यह बताने पर, उन्होंने कहा, ''तुमने स्वामीजी की जन्मतिथि पर संन्यास की इच्छा प्रकट क्यों की? साधारणत: ठाकुर की जन्मतिथि पर ही संन्यास-दीक्षा होता है।'' मैं चुप रहा। जो भी हो, स्वामीजी की जन्मतिथि के दिन मेरा संन्यास हुआ।

संन्यास के बाद प्रयाग में कुम्भमेला के दर्शन हेतु मैंने महापुरुष महाराज से अनुमति माँगी। उन्होंने मुझसे पूछा, ''तुम्हारे पास जाने के लिए रुपया-पैसा है?'' मैंने कहा, ''मेरे पास १२ रुपया है।'' उन दिनों कोलकाता से इलाहाबाद का ट्रेन किराया ४ रुपये था। महाराज की अनुमति लेकर मैं प्रयाग के कुम्भमेला का दर्शन करने गया था।

यद्यपि बहुत वर्ष व्यतीत हो गये हैं, तथापि महापुरुष महाराज अभी भी मेरी स्मृति में विद्यमान हैं। वे एक महान प्रेमिक पुरुष थे।

मिस जोसेफिन मैक्लाउड की स्मृति

१९२७ ई. में मैंने पहली बार मिस मैक्लाउड को देखा था। उस दिन स्वामीजी की जन्मतिथि थी और मैं स्वामीजी के बेडरूम के देखभाल का कार्य कर रहा था। मिस मैक्लाउड और बोसी सेन की धर्मपत्नी विविध-प्रकार के व्यंजन लेकर आयी थीं तथा उन सबको स्वामीजी को भोग लगाने के लिए कहा। स्वामीजी के प्रति उन लोगों की विशुद्ध और अपूर्व भक्ति थी।

तत्पश्चात् १९३४ ई. के बाद किसी समय मिस मैक्लाउड मद्रास आयी थीं। वहाँ एक कॉलोनी आग में जल गयी

थी, हमलोगों ने वहाँ पर एक नवीन कॉलोनी का निर्माण किया था। स्वामी रुद्रानन्द उसके प्रभारी थे। उन्होंने पर्याप्त रुपया संग्रह किया था, जिससे १०० (१५ १५) घरों का निर्माण किया जा सके। इस कॉलोनी का नाम रखा गया 'रामकृष्णपुरम्'। एक दिन मिस मैक्लाउड इस कॉलोनी को देखने गयीं और एक कमरा में गयी। वे लम्बी थीं। कमरे की छत नीचे थी, इसलिए एक ब्रह्मचारी ने उनको सावधानी से अन्दर में घुमाकर दिखाया। कमरा देखकर उन्होंने कहा, ''स्वामीजी ठीक ऐसा ही चाहते थे – किस प्रकार से गरीबों की उन्नति की जाये।''

मिस मैक्लाउड साधारणत: छह महीना अमेरिका में तथा छह महीना भारत में रहती थीं। एक अन्य समय कोलकाता जाते समय वे मद्रास आयी थीं। मद्रास बन्दरगाह से एक टैक्सी लेकर १.३० बजे मठ में आयीं। ठाकुर-मन्दिर उस समय बन्द हो गया था। पुजारी ने ठाकुर को बिस्तर पर शयन दे दिया था। मिस मैक्लाउड ने अध्यक्ष स्वामी सर्वानन्द जी से कहा, ''मैं स्वामीजी के कमरे में जाऊँगी।'' (स्वामीजी का) उनका कमरा ठाकुर के कमरे के पास में ही था। स्वामी सर्वानन्द ने नम्रभाव से कहा, ''स्वामीजी अभी विश्राम कर रहे हैं। अपराह्न ४ बजे तक आपको प्रतीक्षा करनी होगी।'' मिस मैक्लाउड ने कहा, ''व्यर्थ की बातें हैं। स्वामीजी विश्राम कर रहे हैं? वे यदि जीवित रहते, तो बन्दरगाह पर जाकर मेरा स्वागत करते और आप कह रहे हैं कि वे अभी विश्राम कर रहे हैं ! अभी द्वार खोल दीजिए।'' असहाय स्वामी सर्वानन्द ने एक संन्यासी को स्वामीजी के कमरे का द्वार खोल देने के लिए कहा। मैंने स्वामीजी का चित्र उनके तकिया के ऊपर रखा। मिस मैक्लाउड स्वामीजी के बिस्तर पर आँखें बन्द करके कुछ समय तक बैठी रहीं, तत्पश्चात् बन्दरगाह पर जहाज में चली गयीं।

सिस्टर क्रिस्टिन की स्मृति

मैंने सिस्टर क्रिस्टिन को मद्रास में देखा था। किस वर्ष में मुझे स्मरण नहीं। मैं जानता था कि वे थाउजेंड आइलैण्ड पार्क में स्वामीजी से शिक्षा प्राप्त की थीं। मैंने उनसे पूछा, ''सिस्टर, आप लोग पाश्चात्यवासी होकर कैसे स्वामीजी की देववाणी*, जो वेदान्त दर्शन का सार है का रिकॉर्ड किया? शंकराचार्य के वेदान्त को जानने हेतु एक व्यक्ति को अन्यान्य दार्शनिकों के मत को जानना आवश्यक है, जिसका शंकराचार्य ने खण्डन किया है। यद्यपि हम भारतीय को हमारे धर्म तथा दर्शन का कुछ ज्ञान है, तथापि वेदान्त-दर्शन हमें दुष्कर प्रतीत होता है। स्वामीजी जब थाउजेंड आइलैण्ड में वेदान्त पर चर्चा कर रहे थे, तब आप लोगों ने उसे कैसे समझा?''

सिस्टर क्रिस्टिन ने कहा था, ''आप अज्ञानी जैसी बातें कर रहे हैं। क्या आप नहीं जानते, हमलोगों को किसने वेदान्त सिखाया था? हमलोगों को वेदान्त स्वामीजी ने सिखाया था। वे हमलोगों के मन को बहुत ऊँचे स्तर पर ले जाते थे, जिससे हम उनकी बातों को समझ सकें। इसलिये हमलोग स्वामीजी के सब उपदेश और भाषण को धारण करने में समर्थ हो पायी थीं।'' **(क्रमश:)**

*(स्वामीजी की शिष्या एस.इ.वाल्डो स्वामीजी के थाउजेंड आइलैण्ड पार्क के कक्षा की नोट लेती थी, जो परवर्ती काल में 'देववाणी' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई।)

पृष्ठ २२७ का शेष भाग

अहा ! वह अन्धा बालक मानो मेरी आँखों के सामने घूम रहा है ! पता नहीं, उसका क्या हुआ ! फिर हमलोग करेंगे ही क्या? सामने पड़ने पर यथासम्भव कर दिया। धरती कभी भी रोगरहित नहीं होगी, अशिक्षित लोग हमेशा ही रहेंगे। जो लोग सामने पड़ें, उनकी सेवा के माध्यम से हम लोग उन्नत होंगे। अस्पताल में जाकर कुछ संन्यासी कुछ घंटे काम करके एक आदर्श दिखाकर आएँगे। साथ ही उन्नत चरित्रवाले सदाचारी गृहस्थ लोग अस्पताल चलाएँगे। इसी तरह के गृहस्थों को तैयार करना ही वर्तमान समाज की सर्वप्रमुख आवश्यकता है।

मेरी इच्छा होती है कि मैं बोलता जाऊँ और तुमलोग लिखकर रखो कि किशोरों-तरुणों को कैसे तैयार करोगे। उनसे तुम्हें कहना होगा – यहाँ आओ ! यह तुम लोगों का विद्यालय है। सब तुम्हारा है। तुमलोग यहाँ से सीखकर सदाचारी बनो, उन्नत बनो। बार-बार कहकर आत्मविकास की बातों की धारणा करा देनी होगी। जब वे लोग देखेंगे कि तुम उनके सुहृद हो, उनके मित्र की तरह बातें करते हो, तब वे लोग ही तुम्हारे जीवन का अनुसरण करेंगे। चुपचाप और धीरे-धीरे रामकृष्ण के भाव को प्रविष्ट कराना होगा। **(क्रमश:)**

रामकृष्ण मिशन संचालन समिति की संक्षिप्त रिपोर्ट – वर्ष २०२०-२१

(मुख्यालय) पो. बेलूड़ मठ, जिला-हावड़ा, पश्चिम बंगाल – ६११ २०२

ई-मेल : rkmhq@belurmath.org, **वेबसाइट** : www.belurmath.org

रामकृष्ण मिशन की ११२वीं वार्षिक साधारण-सभा बेलूड़ मठ में, रविवार २० फरवरी, २०२२ को संध्या ३:३० बजे सम्पन्न हुई। बैठक में रामकृष्ण मिशन की गवर्निंग बॉडी ने वित्त वर्ष २०२०-२१ में संस्था द्वारा किये गये कार्यों की रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है –

१. पुरस्कार एवं सम्मान : (अ) नेशनल इंस्टीट्यूशनल रैंकिंग फ्रेमवर्क (NIRF), शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा २०२० की वरीयता सूची में हमारे चार कला एवं विज्ञान महाविद्यालयों को प्रशंसनीय स्थान प्रदान किया गया। उनके नाम निम्नांकित हैं – सारदापीठ (बेलूड़) केन्द्र के महाविद्यालय को ७वाँ स्थान, राहड़ा केन्द्र (कोलकाता) के महाविद्यालय को ११वाँ स्थान, नरेन्द्रपुर केन्द्र (कोलकाता) के महाविद्यालय को २०वाँ स्थान और कोयम्बटूर मिशन केन्द्र के महाविद्यालय को ६५वाँ स्थान प्राप्त हुआ।

(ब) भुवनेश्वर केन्द्र के माध्यमिक विद्यालय एवं पश्चिम बंगाल के मालदा केन्द्र के उच्च माध्यमिक विद्यालय को सर्वश्रेष्ठ विद्यालय घोषित किया गया एवं राज्य सरकारों द्वारा पुरस्कार में एक-एक लाख की नगद राशि एवं राज्य प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया।

(स) तमिलनाडु सरकार के विद्यालय शिक्षा विभाग द्वारा चेन्नई मठ के प्राथमिक विद्यालय को सर्वश्रेष्ठ विद्यालय का पुरस्कार प्रदान किया गया।

(द) वृन्दावन चिकित्सालय केन्द्र के आणविक प्रयोगशाला को National Accreditation Board for Testing and Calibration Laboratories (NABL) द्वारा प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया।

(इ) करीमगंज केन्द्र (आसाम) को Chief Minister's Best Communities Action Award for Development प्रदान किया गया।

२. नवीन केन्द्र – (अ) राजस्थान के अजमेर और पश्चिम बंगाल के उत्तर दिनाजपुर, रायगंज में रामकृष्ण मिशन के नये केन्द्रों की स्थापना की गयी। **(ब)** रामकृष्ण मिशन धलेश्वर जो विवेकनगर आश्रम, अगरतला के उपकेन्द्र के रूप में काम कर रहा था, को एक पूर्ण शाखा केन्द्र बना दिया गया। **(स)** अमरकानन, जिला-बांकुड़ा (पश्चिम बंगाल) में रामहरिपुर आश्रम के एक उपकेन्द्र की स्थापना की गयी। **(द)** पश्चिम बंगाल के वीरभूम जिला के बोलपुर, में रामकृष्ण मठ के एक नये केन्द्र को आरम्भ किया गया। **(इ)** तंजौर, तमिलनाडु में रामकृष्ण मठ, चेन्नई के उपकेन्द्र की स्थापना की गयी।

३. नवीन गतिविधियाँ : **(अ)** चेन्नई स्टूडेन्ट्स होम द्वारा वहाँ के आवासीय माध्यमिक विद्यालय एवं पॉलीटेक्नीक महाविद्यालय के विद्यार्थियों को आवश्यक सॉफ्टवेयर से युक्त ६३० टेबलेट पीसी का वितरण किया गया, जिससे उन्हें कोविड-१९ विश्व महामारी के समय आयोजित ऑनलाइन कक्षाओं में सहायता प्राप्त हो। **(ब)** कोयम्बटूर मिशन विद्यालय के सांस्कृतिक केन्द्र द्वारा युवाओं के बीच विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक एवं सभ्यता के आदर्शों एवं आध्यात्मिकता के प्रचार-प्रसार हेतु 'इयाल, इसाइ, नडागम' नामक ऑनलाइन कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। **(स)** RKMVERI (डीम्ड यूनिवर्सिटी) बेलूड़ द्वारा (कोलकाता) – नरेन्द्रपुर ऑफ कैम्पस केन्द्र में एम. एस.सी. इन मेडिकल बॉयोटेक्नालॉजी (MdBT) नामक नया कोर्स प्रारम्भ किया गया तथा राँची ऑफ कैम्पस केन्द्र में पैथोलाजी एवं मेलिक्यूलर बायोलॉजी एवं गुणवत्ता नियंत्रण प्रयोगशाला स्थापित की गयी। **(द)** राऊरकेला केन्द्र ने 'ज्ञान यात्रा' नामक एक मोबाइल ऑडियो-विसुयल यूनिट ऑनलाइन कक्षाओं, प्रेरणादायक शिविर एवं मौलिक शिक्षा के कक्षाओं के आयोजन हेतु शुभारम्भ किया। **(इ)** शिलांग केन्द्र द्वारा खासी, अंग्रेजी एवं हिन्दी भाषाओं में 'का जिंगशाइ – द लाइट' नामक त्रिभाषी ऑ नलाइन मैगजीन का शुभारम्भ किया गया।

४. शैक्षणिक कार्य : रामकृष्ण मिशन एवं मठ ने ५३९ विद्यालयों एवं महाविद्यालयों तथा १०५६ अनौपचारिक केन्द्रों के माध्यम से २,३१,८६८ विद्यार्थियों को शैक्षणिक सेवाएँ उपलब्ध कराने के लिये कुल ४५१.७८ करोड़ रुपये व्यय किये।

५. चिकित्सा कार्य : रामकृष्ण मिशन एवं मठ द्वारा १४ चिकित्सालयों, १२३ चिकित्सा केन्द्रों, ४४ मोबाइल चिकित्सा यूनिट एवं ३५६ मेडिकल शिविरों के माध्यम से ७२,३८२ अन्तरंग रोगियों तथा ३१,९०,२६५ बहिरंग रोगियों की चिकित्सा की गयी। ७ नर्स प्रशिक्षण केन्द्र के माध्यम से ७७६ विद्यार्थियों को प्रशिक्षित किया गया तथा २ मेडिकल रिसर्च इंस्टिट्यूट के माध्यम से १६८ विद्यार्थियों ने अनुसन्धान किया। सभी चिकित्सा कार्यों हेतु कुल २६२.११ करोड़ रुपये व्यय किये गये।

६. राहत एवं पुनर्वास कार्य : रामकृष्ण मिशन एवं मठ द्वारा किये गये राहत एवं पुनर्वास सेवाकार्य से ३३.११ लाख लोग लाभान्वित हुए, जिसमें कुल ३४.२० करोड़ रुपये व्यय हुये।

क) कोविड-१९ राहत कार्य – इससे कुल ४,५१,४७६ परिवार लाभान्वित हुए। रामकृष्ण मिशन प्रधान कार्यालय एवं २६ भारतीय राज्यों/केन्द्र शासित राज्यों में फैले हुए १२७ केन्द्रों द्वारा सूखा राशन किट, फल, सब्जियाँ, स्नैक्स पैकेट, पानी बोतल, फेस मास्क, हेण्ड सेनिटाइज़र बोतलों, साबुन, वाशिंग पावडर, कपड़े एवं पका हुआ भोजन का वितरण किया गया।

– लखनऊ एवं वृन्दावन स्थित चिकित्सा केन्द्रों द्वारा विशेष कोविड वार्ड तैयार किये गये।

– कनखल, हरिद्वार चिकित्सालय द्वारा फ्लू क्लिनिक स्थापित किया गया।

(ख) चक्रवात राहत कार्य : निसर्ग (गुजरात), निवर एवं बुरेवी (तमिलनाडु) एवं अमफान (पश्चिम बंगाल) **(ग)** अग्निशमन राहत कार्य **(घ)** बाढ़ राहत कार्य **(ङ)** सामान्य संकट राहत कार्य **(च)** गंगासागर मेला राहत कार्य **(छ)** शीतकालीन राहत कार्य **(ज)** आर्थिक पुनर्वास कार्य **(झ)** चक्रवात पुनर्वास कार्य : चक्रवात बुलबुल : बेलघरिया (कोलकाता) केन्द्र द्वारा द्वितलीय छात्रावास एवं तूफान आश्रय-स्थल का निर्माण किया गया, पण्डबी पम्प बोरिंग की गयी एवं पीड़ित परिवारों को २६ दो कक्षोंवाले घर जी प्लाट, सुंदरवन, जिला दक्षिण २४ परगना, पश्चिम बंगाल में प्रदान किये गये।

चक्रवात अमफान – निम्नलिखित तीन केन्द्रों द्वारा २३० परिवारों को उनके घरों के पुनर्निर्माण के लिए निर्माण-सामग्री प्रदान की गयी। **(अ)** कोन्टाई, जिला-पूर्वी मेदनीपुर, पश्चिम बंगाल **(ब)** मनसाद्वीप, जिला–दक्षिण-२४ परगना, पश्चिम बंगाल **(स)** टाकि, जिला–उत्तर-२४ परगना, पश्चिम बंगाल।

७. ग्रामीण एवं आदिवासी सेवाकार्य : रामकृष्ण मिशन एवं मठ द्वारा (अ) सामुदायिक विकास (ब) चिकित्सा (स) शिक्षा व (द) सामान्य कल्याण के क्षेत्र में ग्रामीण एवं आदिवासियों को सेवाएँ प्रदान की गयीं, जिससे ३३.९५ लाख लोग लाभान्वित हुए और कुल ७१.६२ करोड़ रुपये व्यय हुये।

८. सामान्य सेवा कार्य : रामकृष्ण मिशन एवं मठ द्वारा सामान्य सेवा-कार्य के द्वारा निम्नलिखित वस्तुओं का वितरण किया गया – (अ) सूखा राशन किट (ब) स्वच्छता किट (स) शिक्षण किट (द) कपड़े एवं कम्बल (इ) तीन पहिया साइकिल (फ) सिलाई मशीन (ग) पका हुआ भोजन (ह) शिक्षा छात्रवृत्ति (ई) गरीबों की आर्थिक सहायता, जिससे २७.६१ लाख लोग लाभान्वित हुए और इसमें कुल व्यय २१.३० करोड़ रुपये व्यय हुए।

९. प्रवचन एवं प्रकाशन कार्य : रामकृष्ण मिशन एवं मठ द्वारा मानवीय मूल्यों पर ८३८७ कक्षाएँ/व्याख्यान आयोजित किये गये, जिसमें कुल १६,६३,२६३ लोग उपस्थित हुए। १२७ सार्वजनिक पुस्तकालयों से १,३८,३०० लोग लाभान्वित हुए। प्रकाशनालयों ने ८० नवीन एवं ५८९ पुस्तकें पुनर्मुद्रित कीं, १३ भाषाओं में १६ पत्रिकायें प्रकाशित हुईं, जिसके २,१९,६९७ ग्राहक हैं। प्रकाशन कार्य में कुल १०.३५ करोड़ रुपये व्यय किये गये।

१०. भारत के बाहर की गतिविधियाँ : **(अ)** विगत कुछ वर्षों से सिडनी वेदान्त केन्द्र के दिशा-निर्देश में कार्य कर रहे आस्ट्रेलिया के एडिलेड, ब्रिसबेन, कैनबरा, मेलबार्न एवं पर्थ इन पाँचों वेदान्त केन्द्रों को आधिकारिक रूप से सिडनी केन्द्र के उपकेन्द्र के रूप में मान्यता प्रदान की गयी। **(ब)** मैमनसिंह (बांग्लादेश) केन्द्र ने ग्रेटर मैमनसिंह जिला दुर्गापुर में दस आदिवासी बच्चों के साथ विवेकानन्द अनाथाश्रम नामक अनाथालय की स्थापना की। **(स)** पोर्टलैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा स्कैपोज़ स्थित रिट्रीट सेन्टर के समीप १६९ एकड़ जमीन क्रय की गयी। **(द)** बांगलादेश, फिलीपीन, सिंगापुर, दक्षिण अफ्रीका, श्रीलंका एवं जाम्बिया स्थित केन्द्रों द्वारा कोविड-१९ राहत सेवा कार्य के अन्तर्गत सूखा राशन किट, पका भोजन, साबुन, हैण्डवॉश बोतल, डिटरजेंट पावडर, फेस मास्क, हैण्ड गलब्स, आत्म-सुरक्षा किट का वितरण किया गया एवं अभावग्रस्त लोगों के लिये पका हुआ भोजन प्रदान किया गया। **(इ)** विश्व के २३ देशों में स्थित कुल ६५ केन्द्रों द्वारा विभिन्न चिकित्सकीय, शैक्षणिक, सांस्कृतिक जनकल्याण, नैतिक एवं आध्यात्मिक सेवाएँ प्रदान की गयीं।

इस अवसर पर हम अपने सभी सदस्यों, शुभचिन्तकों, भक्तों को रामकृष्ण मिशन एवं रामकृष्ण मठ के सेवाकार्यों में उनके अमूल्य सहयोग एवं योगदान के लिये हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

स्वामी सुवीरानन्द
महासचिव
रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन

२० फरवरी, २०२२